शक्ति की राह पर भारत: दिशाहीन दुनिया में रणनीति

लेखक

यामिनी अय्यर | सुनील खिलनानी | प्रकाश मेनन
शिवशंकर मेनन | नितिन पइ | श्रीनाथ राघवन
अजित रानडे | एवं श्याम सरण

अनुवाद | **नवेद अकबर**

अनुक्रम

प्रस्तावना	**05**
भूमिका: लक्ष्य एवं उद्देश्य	**06**
अध्याय 1: वैश्विक संदर्भ	**11**
अध्याय 2: व्यवस्थाओं के बीच	**16**
सामान्य रूपरेखा	16
यूनाइटेड स्टेट्स	17
चीन	19
मध्य शक्तियां	20
यूरोप	21
विकासशील देश	22
अंतरराष्ट्रीय प्रशासन	23
अध्याय 3: सामरिक पड़ोसी देश	**25**
उपमहाद्वीप	25
पाकिस्तान	28
अफ़ग़ानिस्तान	30
पश्चिम एशिया	31
दक्षिण पूर्व एशिया	32
हिंद महासागर क्षेत्र	34

अनुक्रम

अध्याय 4: कठोर शक्ति **36**

राजनीतिक मार्गदर्शन 37

बल-प्रयोग पर सिद्धांत 37

आधुनिकीकरण एवं संरचनात्मक सुधार 38

थिएटर कमांड 39

सैन्य रणनीति और प्रचालन सिद्धांत 39

संयुक्त योजना 41

मानवशक्ति बनाम अस्त्र शक्ति 42

अनुसंधान एवं विकास 43

रक्षा औद्योगिक बेस (डीआईबी) 44

अधिग्रहण प्रणालियां 45

आधुनिकीकरण के लिए वित्तीय स्थान 46

लंबे समय में राजस्व में कमी 46

सेना का राजनीतिकरण 47

परमाणु अस्त्र 48

अध्याय 5: सूचना युग में रणनीति **49**

दृष्टिकोण 50

साइबर आयोग 54

अध्याय 6: पारिस्थितिक संकट **56**

अनुक्रम

अध्याय 7: विकास, समावेश और भारत **64**

आर्थिक विकास की समीक्षा 64

विकास गतिकी 65

वैश्विक दीर्घकालिक ठहराव 66

महामारी से पहले धीमा होता विकास 67

कोविड महामारी के दौरान और बाद में 68

विकास और सुधारों के लिए आगे की राह 69

व्यापार में खुलेपन की अनिवार्यता 71

सामाजिक समावेश और विकास 72

21वीं सदी के एक मज़बूत, सक्षम राज्य का निर्माण 74

राज्य की नसें: इसकी कमज़ोरियां और संभावनाएं 76

निष्कर्ष **80**

प्रस्तावना

शक्ति की राह पर भारत: दिशाहीन दुनिया में रणनीति सामूहिक विचार-विमर्श, बहस और रिपोर्ट लेखन का परिणाम है जिसमें अनेक विश्लेषकों और नीति निर्माताओं का एक विविध और स्वतंत्र समूह शामिल है जिनके नाम हैं: यामिनी अय्यर, सुनील खिलनानी, प्रकाश मेनन, शिवशंकर मेनन, नितिन पइ, श्रीनाथ राघवन, अजित रानडे और श्याम सरण। समूह की स्थापना मई 2020 में की गई थी और वे सितंबर 2021 तक के एक साल से अधिक अरसे में नियमित अंतराल पर मिलते रहे। इस समूह के कई सदस्य 2012 में की गई इसी तरह की एक प्रक्रिया में शामिल रहे थे, जिसने *नॉनएलाइन्मेंट 2.0* की रचना की थी। जिस तरह की चर्चाओं के कारण *नॉनएलाइन्मेंट 2.0* का प्रकाशन संभव हुआ, उसी तरह ये बैठकें भी जीवंत थीं और तर्कों एवं रचनात्मक आलोचना से भरी थीं। इसलिए, इस रिपोर्ट को एक ऐसी रिपोर्ट के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए जिसकी हर पंक्ति से समूह के सभी सदस्य सहमत हों, बल्कि एक ऐसे दस्तावेज़ के रूप में देखा जाए जिसके बारे में हमें आशा है कि यह आगे और चर्चा और विस्तार को प्रेरित करेगा। समूह के सभी सदस्य *शक्ति की राह पर भारत: दिशाहीन दुनिया में रणनीति* में सन्निहित मूल सिद्धांतों और दृष्टिकोणों का पूरी तरह से समर्थन करते हैं। वास्तव में, हम सभी इन सिद्धांतों को अपने साथी नागरिकों और अपने राजनेताओं, नीति निर्माताओं और राय निर्माताओं के ध्यान में लाना चाहते हैं, ताकि हम भारत की सामरिक प्राथमिकताओं और अवसरों के बारे में एक बुनियादी राष्ट्रीय सहमति पर पहुंच सकें।

प्रसार के उद्देश्य से, यह रिपोर्ट सैंटर फ़ॉर पॉलिसी रिसर्च एवं द तक्षशिला इंस्टीट्युशन की वेबसाइटों पर उपलब्ध होगी।

भूमिका:
लक्ष्य एवं उद्देश्य

अक्सर कहा जाता है कि देशों के न तो स्थायी मित्र होते हैं न शत्रु, केवल स्थायी हित होते हैं। इसी प्रकार कहा जा सकता है कि यद्यपि देशों के स्थायी उद्देश्य– अपनी संप्रभुता की रक्षा और अपने नागरिकों का कल्याण– होते हैं, मगर इन्हें हासिल करने की रणनीतियों पर समय-समय पर पुनर्विचार करने और उनमें सुधार लाने की आवश्यकता होती है। इस पुस्तक का नियामक आधार यह है कि अब भारत के बाहरी और आंतरिक माहौल को संरचनात्मक बदलाव आकार दे रहे हैं– शुरुआती रुझान जिनके लिए नए सिरे से सोचना होगा और भारत की रणनीति में व्यापक स्तर पर काट-छांट करनी होगी। एक नई दुनिया को नए विचारों की ज़रूरत है। यह रिपोर्ट एक प्रयास है कि आने वाले दशक में भारत के सामने पेश आने वाले कठिन विकल्पों के बारे में संकेंद्रित रणनीतिक विमर्श और बहस की आवश्यकता पर हमारा ध्यान केंद्रित करे।

इस रिपोर्ट के कुछ लेखक–लगभग एक दशक पहले– पिछली गतिविधि में शामिल रहे थे जिसके फलस्वरूप *नॉनएलाइनमेंट2.0* सामने आई थी। हालांकि उस दस्तावेज़ में प्रस्तुत कई उद्देश्य और रणनीतियां भारत के लिए उपयोगी साबित हुई थीं, मगर हमारा मानना है कि पिछले कुछ वर्षों में दुनिया में हुए परिवर्तनों के मद्देनज़र उस दस्तावेज़ में समावेशित कुछ मान्यताओं और विश्लेषणों की समीक्षा करने की आवश्यकता है। उसमें उल्लिखित मूलभूत रणनीतिक सिद्धांत विश्व के साथ भारत की सतत भागीदारी के लिए आज भी प्रासंगिक हैं: अन्य किसी के विचारों और नीतियों से अनावश्यक रूप से प्रभावित न होते हुए अंतरराष्ट्रीय मामलों में स्वतंत्र निर्णय लेने की आवश्यकता; अन्य शक्तियों की क्षमताओं पर बहुत अधिर निर्भर या उनसे बाधित हुए बिना स्वतंत्र रूप से भारत के हितों की सुरक्षा करने की क्षमता विकसित करने की आवश्यकता; और एक समुचित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था स्थापित करने की आवश्यकता जो न केवल आकांक्षा और शक्ति के बदलते संतुलन को दर्शाए, बल्कि भारत के विकास के लिए अधिकतम स्थान भी प्रदान करे। मगर फिर भी, जिन परिस्थितियों में इन सामरिक स्वायत्तता के उद्देश्यों को गढ़ा गया है, वे निस्संदेह बदल गई हैं।

भारत की सामरिक विचारधारा की मार्गदर्शक अवधारणा शक्ति की एक विशिष्ट संकल्पना रही है। विश्व में भारत के प्रभाव का मूलभूत स्रोत इसके उदाहरण की शक्ति है। यह चार स्तंभों पर टिकी है: घरेलू आर्थिक विकास, सामाजिक समावेशन, राजनीतिक लोकतंत्र, और व्यापक रूप से एक उदारवादी संवैधानिक व्यवस्था। अगर ये अभिन्न स्तंभ सुदृढ़ रहें, तो भारत को कोई रोक नहीं सकता। इक्कीसवीं सदी के मोड़ पर, हम यह मानने लगे थे कि भारत इन सभी मोर्चों पर आगे बढ़ रहा है। लगभग पिछले एक दशक में, सबसे महत्वपूर्ण बदलाव यह आया है कि हम भारत के विकास मॉडल की सफलता को निश्चित मानकर नहीं चल सकते। भारत में

अभी भी बहुत सुदृढ़ता है और अक्सर तुलना में अपने कुछ साथी देशों से बेहतर रहता है। लेकिन भारत के विकास और अंतरराष्ट्रीय प्रभाव के बुनियादी स्रोत निरंतर अनिश्चित से प्रतीत होते हैं। हमें इस बदले हुए दृष्टिकोण का पूरी तरह और खुलकर सामना करना होगा। भारत की सफलता की बुनियाद को मज़बूत करने के लिए एक सचेत राजनीतिक प्रयास की आवश्यकता है, और यह अत्यंत महत्वपूर्ण रणनीतिक अनिवार्यता है।

1990 के दशक के उत्तरार्ध में, भारत के विकास ने गति पकड़ी। किसी हद तक यह आर्थिक सुधारों का परिणाम था, और किसी हद तक इसकी वजह वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत का एकीकरण था। वैश्विक वित्तीय संकट से पहले के दशक में, भारत ने लगभग सात प्रतिशत की औसत वार्षिक विकास दर देखी थी। इस विकास ने एक कहीं अधिक समावेशी समाज के लिए बुनियादी आधार प्रदान करना आरंभ किया। हालांकि सामाजिक समावेशन के मामले में तो भारत का रिकॉर्ड अनियमित ही रहा, मगर इस दशक में प्रति व्यक्ति ग़रीबी के अनुपात में नाटकीय रूप से कमी आई। भारत ने बुनियादी संरचनात्मक निर्माण में, बड़े पैमाने पर प्रौद्योगिकी का लाभ उठाने और राज्य के तंत्र को विकसित करने में तेज़ी से प्रगति करना शुरू कर दिया।

मगर, वैश्विक वित्तीय संकट के बाद वृद्धि झुकाव दर काफ़ी कम हो गई है और भारत की विकास क्षमता पर एक प्रश्नचिह्न लग गया है। आशावादी होकर देखने पर भी, यह अस्पष्ट है कि आर्थिक विकास सामाजिक रूप से समावेशी होगा या नहीं। निश्चय ही, भारत अनेक स्तरों पर प्रगति दर्ज कर रहा है: प्रजनन दर में गिरावट, शिशु मृत्यु दर में कमी, साफ़-सफ़ाई और पानी, बिजली और मोबाइल फ़ोन जैसी सेवाओं और वस्तुओं तक अधिक पहुंच। मगर फिर भी, सामाजिक गतिशीलता और समावेशिता को लेकर गंभीर शंकाएं हैं। यहां तक कि आठ प्रतिशत की वृद्धि के उत्साह भरे दिनों में भी, मानव पूंजी में निवेश करने और नौकरियों के पर्याप्त अच्छे अवसर पैदा करने की भारत की क्षमता सवालों के घेरे में थी। यद्यपि उच्च विकास दर ने अपने नागरिकों की कल्याणकारी आवश्यकताओं को पूरा करने की राज्य की क्षमता को बेहतर बनाया था, मगर इसने बेहतर जीवनस्तर और गुणवत्तापूर्ण रोज़गार के माध्यम से आर्थिक विकास में भाग लेने की नागरिकों की क्षमता में बहुत वृद्धि नहीं की। पिछले एक दशक में स्थिति और ख़राब हुई है। आर्थिक असमानता बढ़ी है। स्वास्थ्य और शिक्षा की पुरानी चुनौतियां बहुत ज़्यादा बढ़ गई हैं। हालांकि विनाशकारी दूसरी लहर के बाद, तेज़ी से टीकाकरण अभियान चलाने समेत भारत ने कोरोना वायरस की महामारी से निपटने में यथोचित रूप से अच्छा काम किया है, मगर हमारे विकास के मार्ग पर महामारी का प्रभाव अभी भी सामने आ रहा है।

विकास और सामाजिक समावेशिता से जुड़े ये प्रश्न भारत के विकास मॉडल के बारे में बौद्धिक और नीतिगत अनिश्चितता भी पैदा कर रहे हैं। विशेषकर, वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ भारत अपने संबंधों को किस प्रकार देखे? इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में आत्म-निर्भरता के क्या मायने हैं? इस चर्चा का कुछ भाग तो बदलती वैश्विक आर्थिक व्यवस्था, बड़े पैमाने पर तकनीकी बदलावों और भारत की अपनी निरंतर विकसित होती आवश्यकताओं के कारण ज़रूरी हैं। फिर भी, यह महत्वपूर्ण है कि हम सहज-सुलभ, तैयारशुदा समाधानों पर समझौता न करें। इस दस्तावेज़ का उद्देश्य अंतर्निहित वैश्विक प्रवृत्तियों और उन विकल्पों को स्पष्ट करना है जिन्हें इस दशक में भारत को अपनाना होगा।

विकास और समावेशन से जुड़े मुद्दों को भले ही हल कर लिया जाए, मगर अन्य दो स्तंभों की स्थिति के बारे में कहीं अधिक अनिश्चितता है: राजनीतिक लोकतंत्र और एक उदार संवैधानिक व्यवस्था। भाजपा की चुनावी सफलता के कारण न केवल पार्टी प्रणाली और राजनीतिक सत्ता की प्रकृति में बदलाव आया है, बल्कि भारत की संवैधानिक व्यवस्था का भी रूपांतरण हुआ है। ये आशंकाएं भी हैं कि भारतीय लोकतंत्र तेज़ी से जातीय बहुसंख्यकवाद, ध्रुवीकरण और विभाजनात्मक प्रवृत्ति की ओर बढ़ रहा है। भारत का जीवंत चुनावी लोकतंत्र जैसे सत्ता हासिल करने की वर्जनाहीन प्रतियोगिता में बदलता जा रहा है, जो चुनावों के लिए वित्तपोषण की कुख्यात अपारदर्शी प्रणाली से संचालित है। अपने इतिहास के किसी भी बिंदु की तुलना में आज भारतीय लोकतंत्र कम समावेशी प्रतीत होता है।

फिर भी, भारत के लोकतंत्र को इसके बुनियादी संवैधानिक मानदंडों से दूर किया जा रहा है। लोकतंत्र के बहुसंख्यकवादी दृष्टिकोण के साथ निरंकुश सत्ता की अवधारणा तीव्रता से जुड़ती जा रही है। संविधान में स्थापित संस्थागत नियंत्रण और संतुलन व्यापक रूप से निष्क्रिय हो रहे हैं। संसद अपने विचार-विमर्श के कार्यों को शायद ही पूरा करती है; न्यायपालिका वैयक्तिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा करने में शिथिल हो रही है; स्वतंत्र एजेंसियां कार्यपालिका की हठ के आगे हथियार डाल रही हैं; और संघीय व्यवस्था में राज्यों की शक्तियां केंद्र के हाथों में जा रही हैं। भारत इस पुरानी कहावत को सही सिद्ध करने की ओर बढ़ रहा है कि स्वतंत्र सरकार के सभी रूपों को आसानी से स्वेच्छाचारी सरकार के उद्देश्यों के साथ जोड़ा जा सकता है।

इन विकासक्रमों के संचयी परिणाम चिंताजनक हो सकते हैं। धीमा विकास, सीमित समावेशन, जातीय बहुसंख्यकवाद और राजनीतिक केंद्रीकरण का मेल भारत को आंतरिक संघर्ष के जाल में उलझा देगा, जो न केवल इसके संसाधनों को समाप्त कर देगा, बल्कि इसकी अंतरराष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओं को भी कमज़ोर कर देगा। इस दोराहे पर भारत के पास एक विकल्प है। यह अनिष्टकारी संकेतों को बीते युग की इबारतें मानकर अनदेखा कर सकता है। या यह समृद्धि, शक्ति और प्रभाव के गहरे, ऐतिहासिक स्रोतों को एक गंभीर और अधिक विश्लेषणात्मक दृष्टि से देख सकता है। किसी भी तौर पर, हमें यह समझना होगा कि आने वाले दशक में भारत को अगर कोई रोक सकता है, तो वह स्वयं भारत है।

इस बीच, हमारे आसपास की दुनिया उल्लेखनीय गति से बदल रही है। दो महाशक्तियां, संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन, एक संरचनात्मक प्रतिद्वंद्विता में लिप्त हैं जो इस दशक से आगे भी जारी रहेगी। इसे एक अन्य शीत युद्ध के रूप में देखना आकर्षक तो है, मगर अत्यंत भ्रामक है। पहली बात तो यह कि आत्मनिर्भर सोवियत संघ की तुलना में चीन वैश्विक अर्थव्यवस्था में बहुत गहरे पैठा हुआ है और अमेरिका-चीन के आर्थिक संबंध बहुत गहरे हैं। दूसरे, शीत युद्ध के विपरीत, संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन के बीच मुक़ाबला भू-राजनीति और सैन्य सुरक्षा से परे है, और इसमें कई क्षेत्र शामिल हैं: वैश्विक व्यापार, निवेश और वित्त; विनिर्माण और आपूर्ति श्रृंखला; तकनीकी खोजें और मानक; वैश्विक शासन; और बुनियादी राजनीतिक मूल्य। अंत में, और शायद सबसे महत्वपूर्ण यह कि हम एक द्विध्रुवीय अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में नहीं जी रहे हैं, जिसमें अन्य महत्वपूर्ण शक्तियों की भूमिका, हित और दुविधाएं दो महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा

के अधीन होती हैं। न ही हम अभी किसी उत्कृष्ट बहुध्रुवीय व्यवस्था में आ सके हैं। इस शासन अंतर्काल की प्रकृति के साथ-साथ, इसकी चुनौतियों और अवसरों को भी समझना भारत के लिए महत्वपूर्ण होगा।

वैश्वीकरण भी दूरगामी परिवर्तनों के दौर से गुज़र रहा है। यदि वैश्विक वित्तीय संकट ने वित्तीय इंजीनियरिंग और विदेशों से आने वाले वित्तीय प्रवाह में अवरोध पैदा किया था, तो पश्चिम ने अंततोगत्वा जिस तरह से इस संकट के प्रति प्रतिक्रिया की, उससे वैश्विक चल निधि में बढ़ोतरी हुई और विश्व बाज़ारों में बेहतर मुनाफ़ा पाने की व्याकुलता बढ़ी। इसने विकसित दुनिया में असामान्य रूप से और लगातार बढ़ती जा रही असमानता को भी उभारा, जिससे वैश्वीकरण के ख़िलाफ़ एक राजनीतिक असंतोष शुरू हो गया। दुनिया भर में संकीर्ण राष्ट्रवाद और संकुचित भावनाएं बढ़ने लगीं और भारत भी इसका अपवाद नहीं था। रोबोटिक्स और क्लाउड कंप्यूटिंग, 3-डी प्रिंटिंग और आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस जैसे तकनीकी परिवर्तनों ने इस प्रवृत्ति को गति प्रदान की, जिसने निर्माणक्षेत्र को विकासशील दुनिया के सस्ते श्रम पर कम निर्भर और कुछ उद्योगों में स्वदेश में निर्माण को एक व्यवहार्य विकल्प बना दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि प्रमुख विकसित अर्थव्यवस्थाएं वैश्विक आर्थिक व्यवस्था से अलग हटकर विभिन्न आकार और महत्वाकांक्षा वाली क्षेत्रीय व्यवस्थाओं की ओर बढ़ने लगीं।

वैश्वीकरण का एक आयाम जो वास्तव में पिछले दशक में गहराया है, वह है सूचना का सीमा पार प्रवाह और महामारी के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय और क्षेत्रीय सीमाओं के परे फैले डिजिटल प्लेटफ़ॉर्मों के उपयोग में तीव्र विस्तार। मगर फिर भी, जैसे-जैसे प्रमुख शक्तियां अपनी सुरक्षा और समृद्धि के लिए डाटा की केंद्रीयता और इसके विश्लेषण को मान्यता देने लगी हैं, वर्ल्ड वाइड वेब में बिखराव दिखने लगा है। पूर्व में वैश्वीकरण भारत के विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण रहा है और, संकीर्णता का जो भी बल रहा हो, उस बुनियादी पुनर्संरचना का ठीक-ठीक आकलन हासिल करना आवश्यक है जो वर्तमान में जारी है।

भू-राजनीति, वैश्वीकरण और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आ रहे ये परिवर्तन महामारी से पहले के हैं। फिर भी, महामारी के बाद की दुनिया में ये न केवल जारी रहेंगे बल्कि इनमें तेज़ी भी आएगी– उन दूसरी प्रवृत्तियों के साथ जो कोविड -19 के कारण सामने आएंगी। महामारी अपने आप में एंथ्रोपोसिन युग के साथ जुड़े पर्यावरणीय संकटों की एक गंभीर चेतावनी है। भारत के सामने मौजूद जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के पैमाने को देखते हुए, पहले के समान कामकाज में लौटना कोई विकल्प नहीं है। जलवायु परिवर्तन पर अंतर-प्रशासनिक पैनल की नवीनतम छठी रिपोर्ट ने वैश्विक जलवायु आपातस्थिति के पैमाने को रेखांकित किया है जो हमारे सामने है लेकिन जिसका भारत जैसे उष्णकटिबंधीय देशों पर प्रभाव कहीं अधिक प्रतिकूल होगा। महामारी के बाद के संदर्भ में, भारत को अपने विकास मॉडल के कुछ मूलभूत पहलुओं पर फिर से विचार करना होगा। विरोधाभासी रूप से, हमारी विकास गाथा में आया वर्तमान अवरोध ऐसे मंथन के लिए एक उपयुक्त अवसर प्रदान कर सकता है। महामारी ने भावी युगीन चुनौतियों के लिए तैयार होने में अंतरराष्ट्रीय सहयोग के महत्व को भी, भले ही इसकी अनुपस्थिति से, रेखांकित किया है।

यह रिपोर्ट आपस में जुड़ी इन चुनौतियों का विश्लेषण करती है और अगले दशक में भारत की बाहरी और आंतरिक नीतियों के व्यापक पुनर्निर्माण का सुझाव देती

है। इन परिस्थितियों में सामरिक स्वायत्तता का अनुसरण पहले से कहीं अधिक चुनौतीपूर्ण होगा। लेकिन हमारा विश्वास है कि यह पहले से कहीं अधिक ज़रूरी है। यदि भारत संतुलित राजनीतिक और सामरिक निर्णय लेता है, तो यह आने वाले वर्षों में और अधिक समृद्ध और प्रभावशाली बन सकता है। मगर, इस प्रयास में, भारत को अपनी ऐतिहासिक शक्तियों को नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए– वास्तव में, इसे उनका लाभ उठाना चाहिए।

यह दावा किया जाता है कि भारत को अब एक नई अंतरराष्ट्रीय पहचान की आवश्यकता है–ऐसी पहचान जो एकल सभ्यता के रूप में अपनी पुष्टि करे और एक ऐसा राज्य जो उपनिवेशवाद के साथ लंबे संघर्ष के मौजूदा प्रभावों को दूर करने के लिए उन सांस्कृतिक और बौद्धिक संसाधनों से, जिन्हें वह स्वदेशी मानता है, लाभ उठाने के लिए कृतसंकल्प है। इस तरह के दावे दोगुने भ्रामक हैं। पहली बात तो, भारतीय संस्कृति की अवधारणा जो इस आकांक्षा को ज़ाहिर करती है, वह भारतीय अतीत के उपनिवेशवादी अध्ययन से अत्यंत प्रभावित है। दूसरे, भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन को न केवल भारत के अतीत द्वारा प्रस्तुत किए गए संसाधनों की कहीं अधिक परिष्कृत समझ थी, बल्कि दृढ़ता से यह कहने का विश्वास भी था कि भारत एक वैकल्पिक सार्वभौमिकता का स्थल होना चाहिए। यह हमारे ऊपर है कि आने वाले वर्षों में अपने द्वारा किए गए चुनावों के माध्यम से उस शक्तिशाली विरासत को महसूस करें।

उपनिवेशवाद से क्षत-विक्षत, एक सभ्यतावान राज्य होने के चीन के दावों की एक फीकी नक़ल पेश करने के बजाय, भारत को अपनी ऐतिहासिक राष्ट्रीय पहचान की ताक़त और लचीलेपन को दृढ़ता से सामने रखना चाहिए। भारतीय राष्ट्रवाद ने विविधता को मिटाने की नहीं, बल्कि गहरे पैठे मतभेदों के स्थलों के रूप में असंख्य स्थानीय पहचानों की रचनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से एक स्थायी राष्ट्रीय सुदृढ़ता को खोजने की कोशिश की है। यह निस्संदेह अंतरराष्ट्रीयतावादी भी था। वैकल्पिक सार्वभौमिकता चाहने की महत्वाकांक्षा खोखले आदर्शवाद से नहीं, बल्कि लंबे समय तक, खुले दिमाग़ से भारतीय इतिहास का अध्ययन करने और वैधता के साथ-साथ शक्ति के महत्व की गहन समझ से उत्पन्न हुई थी। इसलिए भी, बल भारत के उदाहरण की कड़ी मेहनत से प्राप्त शक्ति पर भी है। विकास के एक निरंकुश मॉडल की अति-उत्साही घोषणाओं की तुलना में वह उदाहरण दुनिया से अधिक सशक्त रूप से संवाद कर सकता है। लेकिन, सबसे पहले, भारत को अपने मूलभूत मूल्यों पर खरा उतरना होगा।

अध्याय 1:
वैश्विक संदर्भ

कोरोनावायरस महामारी वैश्विक राजनीति में एक परिवर्तनकारी बिंदु है। यह उन बड़े बदलावों को गति प्रदान करेगी और उन्हें तीव्र करेगी जो पहले ही स्पष्ट हैं, साथ ही नए बलों को भी सामने लाएगी, और सत्ता के समीकरणों में फेरबदल लाएगी। ये सब उस परिदृश्य को भी बदल रहा है जिसमें उभरते भू-राजनीतिक फ़लक में भारत अपना स्थान खोजने के लिए प्रयासरत है। सामूहिक टीकाकरण के लिए जारी प्रयास एक स्वागत योग्य विकास हैं, लेकिन इससे इन प्रवृत्तियों में बदलाव आने की संभावना नहीं है। व्यापक अनिश्चितता के बावजूद, भू-राजनीतिक परिवर्तन के इस काल में भारत जैसे उभरते और महत्वाकांक्षी देश के लिए अपने हितों को आगे बढ़ाने और अपने सामरिक क्षेत्र को बड़ा करने के अवसर निहित हैं। ऐसे गहन जोखिम होंगे जिन्हें प्रबंधित करना होगा; विस्तारित अवसर होंगे जिनका लाभ उठाना होगा।

मुमकिन है कि इस महामारी के कारण उत्तर अमेरिका और यूरोप से वैश्विक आर्थिक और सैन्य शक्ति के पूर्वी एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया और दक्षिण एशिया की ओर जारी अंतरण में और अधिक तेज़ी आए। हालिया नाकामियों के बावजूद, संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप की तुलना में एशियाई देश महामारी और इसके आर्थिक नतीजों से निपटने में अपेक्षाकृत कहीं अधिक सफल रहे हैं। इसलिए एशिया विश्व अर्थव्यवस्था का सबसे गतिशील हिस्सा बना रहेगा। इसी के साथ, महामारी ने एशिया के भीतर भू-राजनीतिक संवेदनशीलताओं को बढ़ा दिया है, जिससे यह सुनिश्चित हो गया है कि आने वाले दशक में यह क्षेत्र भू-राजनीतिक प्रतिद्वंद्विताओं का अखाड़ा भी बना रहेगा। वस्तुतः, यह दशक निर्धारित कर सकता है कि शक्ति के उभरते हुए तारामंडल में इस क्षेत्र के कौन से देश ध्रुवीय स्थिति में हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका दुनिया की सबसे दुर्जेय आर्थिक और सैन्य शक्ति होने के साथ-साथ ज्ञान और नई खोजों का केंद्र बना हुआ है, मगर फिर भी अन्य उभरते देशों की तुलना में इसकी सापेक्ष शक्ति लगातार घट रही है। इसे देश में लोकप्रिय प्रवृत्तियों में बढ़ते राष्ट्रवाद से बल मिल रहा है, जो अमेरिका की अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं को कम करने के पक्ष में है। इसके पलटने की संभावना नहीं है–बिडेन प्रशासन के अमेरिकी नेतृत्व के दावों के बावजूद। अफ़ग़ानिस्तान से अमेरिका और अन्य अंतरराष्ट्रीय सैन्य बलों के अव्यवस्थित ढंग से हटने और उसके बाद अप्रत्याशित तेज़ी से तालिबान द्वारा देश पर क़ब्ज़ा करने ने अमेरिकी विश्वसनीयता को ज़ोरों का झटका दिया है, जो, स्वाभाविक रूप से, पाकिस्तान, चीन और रूस के हितों को लाभ पहुंचा सकता है। मध्य एशिया में भारतीय हितों का लक्ष्य अधिक चुनौतीपूर्ण हो जाएगा क्योंकि अफ़ग़ानिस्तान में भारतीय उपस्थिति, यदि पूरी तरह से समाप्त नहीं की गई है तो, फ़िलहाल तो कम से कम, बुरी तरह बाधित है।

महामारी को सफलतापूर्वक नियंत्रित करने और आर्थिक सुधार के शुरुआती संकेत दर्शाने के बाद, आने वाले दशक में चीन द्वारा आर्थिक और सैन्य शक्ति को और अधिक बढ़ाने की संभावना है। बीजिंग की वर्तमान रुख़ से स्पष्ट है कि वह महामारी, और अब अफ़ग़ानिस्तान से अमेरिका के पीछे हटने के मद्देनज़र अपनी क्षेत्रीय और वैश्विक शक्ति को बढ़ाने का अवसर सामने देख रहा है। मगर फिर, कोविड -19 के प्रकोप में इसका हाथ होने की व्यापक धारणा, और कुछ अंतरराष्ट्रीय व्यवहारों में इसकी अविनीत और आक्रामक मुद्रा के कारण इसे न केवल पश्चिम, बल्कि एशिया और अफ़्रीका के विकासशील देशों से भी प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है। लेकिन फिर भी, इस दशक में चीन के अग्रणी आर्थिक शक्ति के रूप में उभरने की संभावना है। बीजिंग संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ अपनी सैन्य विषमता को भी कम करेगा, लेकिन ऐसी संभावना नहीं है कि वह किसी महत्वपूर्ण स्तर पर इस अंतर को कम करेगा। नतीजतन, युद्धाभ्यास के लिए इसकी जगह, विशेषकर इसके पूर्वी समुद्र तट से लगे समुद्री क्षेत्र तक, सीमित रहेगी।

संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन के बीच टकराव संरचनात्मक है और यह बिडेन के राष्ट्रपति रहने के दौरान और उसके बाद भी जारी रहेगा। संयुक्त राज्य अमेरिका ने स्पष्ट रूप से चीन को अपना प्रमुख प्रतिद्वंद्वी और अपनी प्रभुता के लिए चुनौती माना है। उस हद तक, भारत को एशिया में संतुलन बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भागीदार के रूप में महत्व दिया जाएगा– विशेषकर समुद्री क्षेत्रों में। हालांकि, दो सबसे शक्तिशाली देशों के बीच यह रणनीतिक टकराव जलवायु परिवर्तन जैसे कुछ वैश्विक मुद्दों पर तनाव और सहयोग के चरणों को रोकता नहीं है। यह चीन के दबावों का प्रतिरोध करने के लिए, अमेरिका-चीन के तनावों से लाभ उठाने की भारत की क्षमता और बाहरी संतुलन की संभावनाओं को प्रभावित करेगा।

यद्यपि एशिया में चीनी आधिपत्य की संभावनाएं क्षीण दिखाई देती हैं, मगर इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत के अपने पड़ोस में इसकी सुरक्षा रेखा में विस्तार होगा– जब तक कि नई दिल्ली कोई प्रभावी जवाबी क़दम न उठाए। पाकिस्तान में चीन की भागीदारी कई गुना बढ़ गई है। पाकिस्तान अब भारत के नियंत्रण के लिए कोई कम जोखिम, कम लागत वाला प्रॉक्सी नहीं रहा। यह चीन की वैश्विक रणनीति का एक महत्वपूर्ण घटक बन गया है। यह बीजिंग के महत्वाकांक्षी बैल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) में इसकी प्रमुख भूमिका से ज़ाहिर होता है। चीन-पाकिस्तान इकोनॉमिक कॉरीडोर (सीपीईसी) के माध्यम से पाकिस्तान के प्रति चीन की बढ़ी हुई प्रतिबद्धता ने पाकिस्तानी शत्रुता का सामना करने में भारत का व्यय बढ़ा दिया है। यही तालिबान के अफ़ग़ानिस्तान पर अधिकार करने से हुआ है, जिसने कम से कम निकट भविष्य में तो, भारत के पड़ोस में पाकिस्तान और चीन के प्रभाव को बढ़ा दिया है। इस दशक में हालात और बिगड़ने की संभावना है। भारत के अन्य पड़ोसियों में भी हम इसी तरह की प्रवृत्ति देख रहे हैं। भारतीय क्षेत्र के एक महत्वपूर्ण हिस्से पर नेपाल का हालिया दावा और अन्य संबद्ध क़दम क्षेत्र में चीन के पक्ष में शक्ति के महत्वपूर्ण रूप से बदलते संतुलन की बढ़ती धारणा से जुड़े है। अन्य छोटे पड़ोसियों में भी हमें इसी तरह की प्रवृत्तियों का पूर्वानुमान लगाना होगा, जिन्हें भारत-

चीन संबंधों के बिगड़ने के चलते चीन और अधिक मज़बूती से अपनाएगा। इस प्रतिकूल प्रवृत्ति से निपटने के लिए अपने उपमहाद्वीपीय पड़ोस के प्रति भारत की नीति को कहीं अधिक ध्यान और प्रतिबद्धता की आवश्यकता होगी।

संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलनात्मक गिरावट सिर्फ़ चीन के एक महान शक्ति के रूप में उभरने के कारण नहीं है, बल्कि इसलिए भी है कि एशिया और अन्य स्थानों पर महत्वपूर्ण रूप से उभरती शक्तियों का एक समूह है। इनमें एशिया में भारत, दक्षिण कोरिया, इंडोनेशिया और वियतनाम शामिल हैं; अफ़्रीका में नाइजीरिया और दक्षिण अफ़्रीका; और लैटिन अमेरिका में ब्राज़ील हैं। इसके अलावा, शक्ति के विद्यमान केंद्र हैं जो महत्वपूर्ण आर्थिक और सैन्य शक्ति क़ायम रखे हुए हैं। इनमें एशिया में जापान, ऑस्ट्रेलिया और यूरोप में जर्मनी और फ़्रांस शामिल हैं। अपने घटते आर्थिक ख़ाके के बावजूद रूस एक सशक्त सैन्य शक्ति बना हुआ है। अपनी वर्तमान विखंडित होती स्थिति में भी, यूरोपीय संघ एक प्रभावशाली अंतरराष्ट्रीय खिलाड़ी है– जिसने अपने अप्रचलित और यहां तक कि अपना अंत होने की भविष्यवाणियों को भी धता बता दिया है। यह सब विभिन्न नापतौल में शक्ति के एक धर्मनिरपेक्ष फैलाव की ओर इशारा करता है, जिसका परिणाम एक कम संरचित और व्यवस्थित अंतरराष्ट्रीय प्रणाली है जो लगातार अपना आकार बदल रही है। इसे व्यवस्थाओं के बीच स्थित दुनिया के रूप में बेहतर तरीक़े से समझा जा सकता है: जो न तो एकध्रुवीय है, जैसा कि शीत युद्ध की समाप्ति के बाद थी, न ही अभी तक बहुध्रुवीय हुई है, हालांकि उस दिशा में प्रवृत्त हो रही है।

भारत को इस दुनिया में अपना स्थान खोजना होगा, जहां शक्ति कहीं अधिक बंटी, साथ ही कहीं कम संरचित है। इस दशक में भारत की विदेश नीति का प्राथमिक उद्देश्य बहुध्रुवीयता की ओर बढ़ रही शुरुआती प्रवृत्ति को मज़बूत और सशक्त करना होगा। यह भारत की सामरिक स्वायत्तता के विस्तार के लिए बेहतरीन संभावनाएं प्रदान करता है।

पहले से मौजूद अन्य दो प्रवृत्तियों को महामारी प्रबल कर रही है। हालांकि वैश्विक आयाम के साथ यह उल्लेखनीय अंतरराष्ट्रीय संकट है, मगर देशों ने अपनी घरेलू नीतियों के माध्यम से कोविड-19 का मुक़ाबला किया है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बहुत कम समन्वित और सहयोगात्मक कार्रवाई हुई है, हालांकि महामारी से निपटने का यह सबसे तार्किक और प्रभावी तरीक़ा होता। विश्व स्वास्थ्य संगठन और संयुक्त राष्ट्र जैसे अंतरराष्ट्रीय प्रशासनिक संस्थान इस संकट के दौरान कमज़ोर और कम संसाधन वाले साबित हुए। यदि कोविड-19 एंथ्रोपोसीन के आगे मंडराते संकटों का अगुआ है, तो वैश्विक प्रशासन के मौजूदा संस्थानों ने ख़ुद को आने वाले संकटों के लिए पूरी तरह से तैयारी-रहित दिखाया है। अंतरराष्ट्रीय नेतृत्व की अनुपस्थिति मुखर है जो वैश्विक संकट का समन्वित सामना करने में सम्मान और विश्वसनीयता प्राप्त करता है। अंतरराष्ट्रीय चुनौतियों के बढ़ते प्रवाह और बहुपक्षीय समाधानों के निरंतर जारी प्रतिरोध के बीच यह तनाव महामारी के बाद की दुनिया का एक प्रमुख वैशिष्ट्य होगा।

आर्थिक और सैन्य शक्ति में कमी के बावजूद, भारत का बहुपक्षीय संस्थानों में अंतरराष्ट्रीय एक्टिविज़्म और नेतृत्व का इतिहास रहा है। क्या यह राष्ट्रवादी आग्रहों पर क़ाबू पाने में जो वर्तमान में इसे (साथ ही अन्य

प्रमुख शक्तियों को भी) आक्रांत किए हुए हैं, और अंतरराष्ट्रीय मंच पर इस तरह के नेतृत्व की भूमिका की इच्छा करने में सक्षम हो पाएगा? क्या यह अन्य शक्तियों के साथ गठबंधन बना सकता है जो सामूहिक रूप से ऐसा नेतृत्व प्रदान कर सकें? इसके लिए वर्तमान में जारी भारत की अंतरराष्ट्रीय भूमिका को लेकर एक अलग कथानक चाहिए होगा। हालांकि, उभरते हुए भू-राजनीतिक परिदृश्य में भारत एक बड़े अंतराल को भर सकता है, बशर्ते– सामरिक कौशल के लिए अपने स्वयं के स्थान का विस्तार करते हुए– वह इस मार्ग पर चलने का निर्णय लेता है।

जैसा कि पहले बताया गया है, महामारी ने वैश्वीकरण के ख़िलाफ़ व्यापक रूप से पनपी भावना को भी प्रबल किया है– जो 2008 के वैश्विक वित्तीय संकट के परिणामस्वरूप उठी थी। वर्तमान संकट ने न केवल वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं को बाधित किया है, बल्कि गहरी असुरक्षाओं को भी रेखांकित किया है जो महत्वपूर्ण वस्तुओं और मध्यवर्ती वस्तुओं के लिए विशेष स्रोतों पर अत्यधिक निर्भरता से उपजती हैं। ऐसा करते हुए, महामारी वैश्वीकरण की गति को धीमा करने में तेज़ी लाई है– तो कुछ क्षेत्रों में वैश्वीकरण का उलट हुआ है। इसी के साथ, वैश्वीकरण का एक और आयाम सुदृढ़ हो रहा है: डिजिटल डोमेन, जिसमें देशों के बीच पारस्परिक संवाद और विनिमय में भारी बढ़ोतरी हुई है। आने वाले दशक में सामरिक और महत्वपूर्ण उत्पादन इकाइयों को स्वदेश में या भरोसेमंद भागीदारों के साथ छोटी, क्षेत्रीय आपूर्ति श्रृंखलाओं को देश में ही स्थापित होते देखा जाएगा। वैश्वीकरण ने उपयुक्त समय पर जिस उत्पादन प्रक्रिया को स्थापित किया था, वह न्यूनतम सामान और अतिरिक्त क्षमता के रखरखाव को स्थान दे सकती है। दक्षता की हानि के विरुद्ध जोखिम प्रीमियम को लागू किया जाएगा। एशिया में मौजूदा आपूर्ति श्रृंखलाओं के बिखरने और स्थानांतरित होने का लाभ भारत को हो सकता है, लेकिन ऐसा कर पाने की इसकी क्षमता लंबे समय से चली आ रही उन चुनौतियों को दूर करने पर निर्भर करेगी, जिन्होंने विनिर्माण के क्षेत्र में इसे वियतनाम या बांग्लादेश जैसे अन्य एशियाई देशों की तुलना में विदेशी निवेश के लिए कम आकर्षक स्थान बना दिया है।

जो भी हो, भारत के लिए वैश्वीकरण से पीठ मोड़ना और ख़ुद को एक संकीर्ण और संरक्षणवादी अर्थव्यवस्था में बंद कर लेना अनुचित और अलाभकारी होगा। आत्मनिर्भरता और सामरिक स्वायत्ता की खोज को निरंकुशता से नहीं, बल्कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में समृद्धि के समकक्ष रखना चाहिए। वो देश जो वैश्वीकरण के तर्क का मानते हैं और मौजूदा प्रवृत्तियों के बावजूद आगे रहना चाहते हैं, वे अगले दशक और उसके बाद भी अग्रिम पंक्ति में बने रहने की बेहतर स्थिति में होंगे।

हमें यह भी रेखांकित करना होगा कि भारत के लिए एक ज़्यादा सक्रिय क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय भूमिका विश्व अर्थव्यवस्था में हाशिए पर रहने के साथ बेमेल रहेगी। विशेषकर, क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी (आरसीईपी) से बाहर रहने का विकल्प चुनकर भारत एशिया में एक विश्वसनीय राजनीतिक और सुरक्षा संबंधी भूमिका नहीं निभा पाएगा। इसे न केवल आरसीईपी में फिर से शामिल होना चाहिए, बल्कि एशिया-प्रशांत आर्थिक सम्मेलन (एपीईसी) में सदस्यता पाने की अपनी लंबे समय से जारी मांग को भी जारी रखना चाहिए। भारत का अपना इतिहास

दर्शाता है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण ने तुरंत इसे तेज़ी से विकसित होने में सक्षम कर दिया था और इसके सामरिक विकल्पों और कूटनीतिक स्थान को बढ़ाया था। स्वदेश में गुटीय हितों से जुड़े मुद्दों के कारण अपने आर्थिक प्रभावों को कम करने की बजाय भारत को वैश्विक अर्थव्यवस्था के भीतर प्रतिद्वंद्विता से निकली सामरिक स्वायत्तता को पाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

भारत के अग्रिम पंक्ति की शक्ति बनकर उभरने में एशिया और अन्य भागों के देशों का हित निहित है। इसे बरक़रार रखने के लिए, एक स्थिर और स्थायी बहुध्रुवीय वैश्विक व्यवस्था– एक अंतरराष्ट्रीय प्रणाली जो दूसरी बड़ी शक्तियों के शांतिपूर्वक उभरने को सक्षम करेगी– को बनाए रखना अहम होगा। यूनाइटेड स्टेट्स अपनी मौजूदा वैश्विक प्रधानता को बनाए रखना चाहेगा, लेकिन ऐसा होने की संभावना प्रतीत नहीं होती। चीन एशिया में इसी प्रकार का प्रभुत्व हासिल करने और इस प्रकार एक वास्तविक वैश्विक सुपरपावर बनने की आकांक्षा कर सकता है, मगर आगे आने वाले लगातार संकुल होते और प्रतिद्वंद्वात्मक भू-राजनीतिक अखाड़े में ऐसा हो पाना भी मुमकिन नहीं है। अगर कोई एक देश है जो अपने आकार, जनसंख्या, आर्थिक संभावनाओं, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय क्षमताओं द्वारा चीन के समकक्ष आ सकता है या उससे आगे निकल सकता है, तो वह भारत है। चीन के समान ही इसके पास भी सभ्यतागत इकाई के रूप में अपनी पहचान है, मगर चीन की तुलना में इसका दृष्टिकोण कहीं अधिक सार्वभौमिक है। बहुलवादी लोकतंत्र के रूप में इसकी सफलता प्रभाव और प्रतिष्ठा के साथ अतंरराष्ट्रीय वैधता पाने में ज़बरदस्त ढंग से कारगर रही है।

इस दशक में एक प्रमुख चुनौती चीन के समक्ष एक अहम प्रतिकारी शक्ति होने की अपनी विश्वसनीयता को बनाए रखने की भारत की क्षमता, और एक बड़ी शक्ति के रूप में अपने उभरने के लिए अंतरराष्ट्रीय समर्थन हासिल करने के लिए इसका लाभ उठाना होगा। देश में एक उदारवादी प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था को बरक़रार रखने की भारत की क्षमता इसकी बाहरी संभावनाओं पर बहुत बड़ा प्रभाव डालेगी। उस दुनिया में भी जहां भू-राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता हावी है, लोकतांत्रिक मूल्य और मानवाधिकार अपने महत्व और सार्थकता को बनाए रखेंगे– जैसा कि यूएस-चीन प्रतिद्वंद्विता के वर्तमान निर्धारण से स्पष्ट है। यह महत्वपूर्ण है कि हम घरेलू राजनीतिक और वैचारिक कारकों के प्रतिकूल प्रभाव को स्वीकार करें जो हमारी विदेश नीति को चला रहे हैं। यह हमने पाकिस्तान के साथ, और किसी हद तक, नेपाल और बांग्लादेश के साथ अपने संबंधों में देखा है। इस प्रवृत्ति को रोकना और पलटना होगा। राजनीतिक ध्रुवीकरण और बहुसंख्यकवाद भारत को और अधिक कमज़ोर कर देंगे– जो आगामी दशक में आने वाली चुनौतियों और अवसरों को हासिल करने के लिए संघर्ष कर रहा हो सकता है।

अध्याय 2:
व्यवस्थाओं के बीच

महामारी के बाद की दुनिया में भारत कठिन सामरिक विकल्पों से रूबरू हो रहा है। मगर फिर भी, भारत के लिए विश्व, और विश्व के लिए भारत पहले से कहीं ज़्यादा मायने रखते हैं। पूर्व में नई दिल्ली परिवर्तन के समक्ष दक्ष रही है। अगर भारत के हित के लिए द्विध्रुवीय शीत युद्ध में रत दुनिया के दोनों पक्षों को साधने में गुटनिरपेक्षता एक रणनीति थी, तो वैश्वीकरण को अपनाना और यूनाइटेड स्टेट्स और चीन के साथ संबंधों में बदलाव लाना शीत युद्ध के बाद के एकध्रुवीय पल के प्रति इसका जवाब था। वैश्विक वित्त संकट के बाद भ्रमित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था ने भारत की सर्वव्यापी विदेश नीति को देखा।

लेकिन वर्तमान संकट-काल में यह उतना प्रभावी नहीं है, जिसमें तेज़ी से हो रहे भू-राजनीतिक परिवर्तनों, चीन की स्पष्ट आक्रामकता और महत्वाकांक्षा, यूनाइटेड स्टेट्स की कम होती अंतरराष्ट्रीय भागीदारी और वैश्विक जन-साधन उपलब्ध करवाने की अनिच्छा, आर्थिक अंतरनिर्भरता के अस्त्रीकरण, और आर्थिक और प्रौद्योगिकीय शक्ति के बिखराव, हालांकि विषम, से स्पष्ट है। परिणामस्वरूप, राजनीतिक असंतोष और विवाद फिर से सक्रिय हो गए हैं, उनमें से अधिकांश भारत के आसपास हैं: पूर्वी चीन सागर से ताइवान तक, दक्षिण चीन सागर से लेकर भारत-चीन सीमा तक, यमन और सीरिया से लेकर अफ़ग़ानिस्तान और यूक्रेन तक।

इस अनिश्चित और कहीं अधिक अस्थिर दुनिया में संलिप्त होने के अलावा भारत के सामने कोई और विकल्प नहीं होगा। इसकी संलिप्तता का रूप निर्धारण ही भारत के नीति-निर्माताओं के लिए सबसे बड़ी चुनौती होगा। व्यवस्थाओं के बीच मौजूद इस दुनिया में भारत को ख़ुद को कहां स्थित करना चाहिए?

सामान्य रूपरेखा

उच्च सामरिक अनिश्चितता के काल में और किसी मान्य वैश्विक व्यवस्था की अनुपस्थिति में, दो महाशक्तियों के बीच टकराव और सहयोग, हालांकि सीमित, अंतरराष्ट्रीय संबंधों के सबसे महत्वपूर्ण प्रेरकों में से एक होगा। मगर फिर भी यह द्विध्रुवीय दुनिया नहीं होगी–न तो प्रतिरोधी शीत युद्ध के अर्थ में, और न ही जी-2 सहस्वामित्व के संदर्भों में। अगर चीन और यूनाइटेड स्टेट्स सहमत हो भी जाते हैं तो भी उत्तर कोरिया के परमाणु अस्त्रों या चीन की समुद्र पर दावेदारी के मुद्दों को दूसरी क्षेत्रीय और उभरती शक्तियों के बिना केवल इन दोनों के द्वारा नहीं सुलझाया जा सकता। इसके अलावा, यद्यपि यूएस और चीन आर्थिक रूप से एक दूसरे पर निर्भर हैं, मगर फिर भी वे सामरिक प्रतिद्वंद्वी और प्रतिस्पर्द्धी हैं। चीन-यूएस संबंधों के बीच सहयोग और टकराव का संतुलन न केवल उनके नेतृत्वों में परिवर्तन से,

बल्कि उनकी सापेक्ष शक्ति में बदलाव आने से भी बदलते रहने की संभावना है।

भारत के लिए, यह धुंधली और अनिश्चित संभावना, जिसमें परिवर्तन ही एकमात्र निश्चितता है, *सामरिक स्वायत्तता* को और भी अधिक आवश्यक बना देती है। यह हमारी समस्याओं पर दूसरी सभी शक्तियों के साथ काम करने के साथ ही, बड़े मसलों पर निर्णय लेने की क्षमता हमारे हाथों में रखती है। भारत-यूएस-चीन के त्रिकोण में भारत के लिए आदर्श स्थिति यूएस और चीन दोनों के साथ अलग-अलग, उनके पारस्परिक संबंधों से बेहतर द्विपक्षीय संबंध रखना होगा। लेकिन निकट भविष्य में भारत एक दूसरे के प्रति उनके महत्व से मेल नहीं बिठा पाएगा, और इसलिए उसे उन मुद्दों पर जो उसके भविष्य से जुड़े हैं, दूसरे संबंधों के यथासंभव व्यापक फ़लक का निर्माण करना होगा।

भारत के हितों का संपूर्ण फ़लक इसके लिए असाधारण हो सकता है, मगर इनमें से प्रत्येक दूसरे देशों के साथ बंटा होता है–जब बात अंतरराष्ट्रीय मुद्दों की हो तो बड़े पैमाने पर और जब बात भारत की क्षेत्रीय अखंडता जैसे विशिष्ट हितों की हो तो छोटे स्तर पर। इसलिए, जलवायु परिवर्तन, आंतकवाद से मुक़ाबला करने, और समुद्री सुरक्षा जैसे व्यापक मुद्दों पर भारत के लिए बड़े मुद्दे-आधारित गठबंधन स्थापित करना संभव होना चाहिए–दूसरे अनेक देशों के साथ काम करके जो दोनों महाशक्तियों के ज़बरदस्त प्रभावाधिक्य से असुरक्षित या ख़तरा महसूस करते हैं और जिन्हें टकराव और संघर्ष की भू-राजनीतिक दुनिया में अपने लगातार अलग-थलग पड़ने का डर हो। भारत का लगभग आधा सकल घरेलू उत्पाद विदेशी व्यापार पर निर्भर होने के कारण, पहले हिंद महासागर और फिर हिंद-प्रशांत महासागर में उस व्यापार के आवागमन के लिए आवश्यक समुद्री मार्गों की रक्षा-सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए दूसरों के साथ काम करना बहुत बड़ी प्राथमिकता होना चाहिए। एक कार्यशील नियम-आधारित बहुपक्षीय व्यापारिक व्यवस्था भी भारत के हित में है और यह इसकी बहुपक्षीय आर्थिक कूटनीति का लक्ष्य होना चाहिए।

भारत के कुछ मुख्य सहयोगियों के साथ संबंधों के संदर्भ में इस पहल के क्या मायने होंगे, उसे आगे परखा गया है।

यूनाइटेड स्टेट्स

भारत के आंतरिक रूपांतरण और ऊपर बताए गए सभी प्रयासों में यूनाइटेड स्टेट्स अहम सहयोगी रहा है। इस सदी के पहले दो दशकों में संपूर्ण संबंधों में उल्लेखनीय प्रगति हासिल हुई है। हालिया अतीत में, बढ़ते सुरक्षा सामंजस्य, एशियाई विकासों के विषय में साझा सरोकारों, और चीन के व्यवहार के कारण दोनों देशों के बीच रक्षा और सुरक्षा संबंध काफ़ी विकसित हुए हैं। आधारभूत रक्षा समझौतों पर हस्ताक्षरों के साथ व्यापक प्रतिबद्धता और अमेरिकी हथियार प्रणालियों, ख़ुफ़िया तंत्र और सैन्य सिद्धांतों पर बढ़ती निर्भरता, विशेषकर समुद्री क्षेत्र में, भी जुड़ी है। इसने रूस जैसे पारंपरिक सहयोगियों को पीछे धकेल दिया है जिन्होंने विशिष्ट आपूर्तिकर्ता का अपना मुक़ाम खो दिया है और अब संदेह है कि वे समान धरातल पर कार्यशील हैं भी या नहीं।

अधिक गंभीर प्रश्न ये हैं कि क्या इस तरह की निर्भरता नई संवेदनशीलताओं को खोलती है और क्या वे वास्तव में भारत की सामरिक आवश्यकताओं के उपयुक्त हैं। उत्तरवर्ती में महाद्वीपीय और साथ ही समुद्री क्षेत्र भी शामिल हैं जैसा कि बसंत 2020 में एलएसी पर चीन के साथ हुई घटनाओं ने हमें याद दिलाया था। यद्यपि ये बदलाव उस कहीं अधिक आक्रामक रवैये का जवाब देने के लिए आवश्यक हो सकते हैं जो एक बहुत अधिक शक्तिशाली चीन ने भारत के प्रति अपनाया हुआ है, फिर भी इसका समाधान निकालना और ये सुनिश्चित करना ही नई दिल्ली के हित में होगा कि जब तक वह अपने स्वयं के उपकरण और ख़ुफ़िया तंत्र की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम न हो जाए, इसे रक्षा बाज़ारों में प्रतिस्पर्धा को बनाए रखते हुए और अधिक सशक्त जवाबी ख़ुफ़िया क्षमताओं द्वारा सुरक्षा उपायों का निर्माण करना होगा। राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े मुद्दों और रक्षा ख़रीद में निर्णय लेने को खुला और पारदर्शी होना होगा।

राजनीतिक रूप से, यह भारत के हित में है कि यूएस हिंद-प्रशांत और महाद्वीपीय एशिया में संलिप्त रहे, और भारत क्षेत्र को खुला, बहुलवादी और एकल-शक्ति के प्रभुत्व से मुक्त रखने के लिए यूएस के साथ काम करे। यूएस, ऑस्ट्रेलिया और जापान के साथ क्वाड मौजूद रहेगा। हिंद-प्रशांत महासागर के माध्यम से समुद्री सुरक्षा को शामिल करने के लिए अब इसे अपने दायरे को सुरक्षा वार्ता से आगे बढ़ाना होगा।

इसे अब भारत-प्रशांत के माध्यम से समुद्री सुरक्षा को शामिल करने के लिए सुरक्षा वार्ता से परे अपने दायरे का विस्तार करने की आवश्यकता है। कोविड-19 की वैक्सीन में सहयोग करने पर सहमत होकर क्वाड ने व्यापक महत्वाकांक्षाओं का संकेत दिया है। मुमकिन है कि यह आर्थिक आयाम भी हासिल कर ले। मगर, प्रभावी होने के लिए, भले ही आवश्यक रूप से पूर्ण सदस्य न बनाते हुए, जब तक कि वे ऐसा न चाहें, एक व्यवहार्य क्वाड-प्लस बनाकर इसे सिंगापुर, इंडोनेशिया और वियतनाम जैसे अन्य देशों को भी शामिल करना होगा। कुल मिलाकर, एक सुरक्षित और समृद्ध हिंद-प्रशांत महासागर के समान लक्ष्य और चीन के हालिया व्यवहार के नकारात्मक आकलन के आधार पर भारत-यूएस राजनीतिक और सुरक्षा सामंजस्य बढ़ रहा है। आने वाले दशक में इसके बढ़ने की ही संभावना है।

इसके बावजूद, आने वाले दशक में भारत-यूएस सहयोग की संभावनाएं दोनों देशों के समाजों और अर्थव्यवस्थाओं के लगातार अंतर्मुखी होते जाने, ख़ासकर आत्मनिर्भरता की ओर लक्षित अधिक व्यापारिक नीतियों और व्यवहार को अपनाने, के कारण सीमित हो सकती हैं। भारत और यूएस एशिया-पैसिफ़िक में आरसीईपी और कॉम्प्रिहेंसिव एंड प्रोग्रेसिव एग्रीमेंट फ़ॉर ट्रांस-पैसिफ़िक पार्टनरशिप (सीपीटीपीपी) जैसे क्षेत्रीय व्यापारिक प्रबंधों में शामिल नहीं हैं। भारत ने आरसीईपी वार्ताओं को उनके छोर पर छोड़ने का फ़ैसला किया और लगातार चार साल टैरिफ़ बढ़ाता रहा। यहां तक कि यूएस के साथ दस अरब डॉलर की मिनी-व्यापार डील जैसे छोटे द्विपक्षीय क़दमों को भी पूरा न किया जा सका और दोनों देशों में संरक्षणवाद के साथ ही दोनों ओर से आर्थिक मांगों की फ़ेहरिस्त बढ़ रही है।

इसी के साथ, भारत के रूपांतरण के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्रों: ऊर्जा, व्यापार, निवेश, शिक्षा और स्वास्थ्य में

द्विपक्षीय सहयोग की पर्याप्त और बढ़ती संभावनाएं हैं। ऊर्जा और जलवायु परिवर्तन में, विशेषकर, प्रौद्योगिकीय समाधानों और अक्षय ऊर्जा पर दोनों पक्षों के साथ में काम करने की फ़ौरी ज़रूरत है। इस मोर्चे पर बिडेन प्रशासन द्वारा नियोजित घरेलू निवेश का परिमाण सहयोग की अनेक संभावनाएं खोलता है। बहु-हितधारक इंटरनेट के नियंत्रण से परे, साइबर सुरक्षा के लिए डिजिटल सहयोग से भी दोनों देशों को लाभ होगा। एक ऐसी दुनिया में जो महामारी से ठप हो गई थी, भारत और यूएस के लिए यह तर्कसंगत होगा कि वे कोविड के लिए दवाओं और टीकाकरण को वैश्विक जनहित के तौर पर मानने, आईपीआर में छूट देने, उन्हें सस्ते में बनाने और व्यापक रूप से उपलब्ध कराने में सहयोग करें– जैसा कि उन्होंने एचआईवी-एड्स के उपचार के लिए किया था।

चीन

भारत-यूएस गठबंधन के एकदम उलट, भारत-चीन संबंधों ने 2012 के आसपास से लगातार बढ़ती दूरी और टकराव देखा है। जैसे-जैसे चीन ने ताक़त हासिल की, उसने भारत के उभरने पर, यूनाइटेड स्टेट्स से भारत की बढ़ती नज़दीकी पर, और बीआरआई पर भारत के स्वतंत्र नज़रिए को लेकर नकारात्मक प्रतिक्रिया दी है। चीन ने उपमहाद्वीप और हिंद महासागर में अपनी मौजूदगी और हस्तक्षेप बढ़ाया है, पाकिस्तान की सुरक्षा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता में तेज़ी ला दी है, और जम्मू एवं कश्मीर के हिस्सों पर अपने क़ब्ज़े को भी सुदृढ़ किया है। पाकिस्तान और चीन समर्थित और शक्ति-प्रदत्त तालिबान शासित अफ़ग़ानिस्तान सीमा पार से आतंकवाद को लेकर भारत की संवेदनशीलता को बढ़ाएगा और जम्मू एवं कश्मीर में कहीं ज़्यादा अस्थिरता पैदा करने का ख़तरा बनेगा।

2013 से लगातार तनावपूर्ण होते रिश्ते के अनेक चिह्नों के बीच, सीमा पर हो रही घटनाओं का स्तर और दायरा नियमित तरीक़े से बढ़ा है। 2020 की बसंत में, चाइनीज़ पीपुल्स लिबरेशन आर्मी (पीएलए) ने वास्तविक नियंत्रण रेखा के भारतीय पक्ष में नए इलाक़े पर क़ब्ज़ा कर लिया और भारतीय सेना को उन स्थानों की निगरानी करने से रोका जहां वे अनेक वर्षों से मौजूद रहे थे, परिणामस्वरूप पैंतालीस साल में पहली बार सीमा पर सैनिक शहीद हुए। अनेक सालों के काम पर पानी फेरते हुए, अब चीन के साथ भारत की सीमा जीवंत है–सैन्यीकृत और विवादग्रस्त।

जीवंत सीमा और वैमनस्यपूर्ण राजनीतिक संबंधों की वास्तविकता में भारत की चीन नीति को पुनर्निधारित करना होगा। स्वाभाविक रूप से इसके परिणामस्वरूप भारत महत्वपूर्ण सैक्टरों में चीन पर आर्थिक निर्भरता को कम करने के साथ ही बाहरी संतुलकों को तलाशने का प्रयास भी कर रहा है जो चीन के अस्वीकार्य व्यवहार पर रोक लगा सकें। चीन सापेक्ष शक्ति की अपनी धारणा के आधार पर काम करता है। भारत में आत्म-सुदृढ़ीकरण और एशिया में संतुलनकारी राजनीति, जिसकी इसे आवश्यकता है, न तो आसान रहेगी, न ही सहज। जब तक भारत चीन के प्रभुत्व वाली एशियाई सुरक्षा और आर्थिक व्यवस्था को अपने हितों के लिए प्रतिकूल मानता रहेगा, तब तक हमें संबंधों में टकराव के ऐसे बिंदुओं के जारी रहने की अपेक्षा करनी होगी जिन्हें भलीभांति साधा जा सकता है। यह कार्य चीन के आंतरिक मार्ग

और चीन-यूएस संबंधों की राह से स्वतंत्र होगा, जो दोनों ही भारत के नियंत्रण से बाहर हैं लेकिन जो व्यापक रूप से भावी अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को आकार देंगे जिसमें भारत अपने विकल्पों का प्रयोग करेगा।

आने वाले दशक में भारत की बाहरी सुरक्षा नीतियों में चीन की चुनौती सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा रहने की संभावना है। यह मुख्यत: एशिया में महाद्वीपीय चुनौती है, जिसके लिए भारत-प्रशांत महासागर रणनीति या किसी भी आकार और संयोजन के क्वाड से परे प्रतिक्रिया की आवश्यकता होगी। चीन की चुनौती ईरान, तुर्की और रूस जैसी क्षेत्रीय एशियाई शक्तियों के साथ काम करने को और भी अधिक महत्वपूर्ण बना देती है। अगर एक महाद्वीपीय भू-राजनीतिक रणनीति तैयार करने का निहितार्थ हमारी अब तक की चिंताओं को अलग रखना है–जैसे, तुर्की के पाकिस्तान के साथ संबंध–तो हमें ऐसा करने के लिए तैयार रहना होगा। चीन के प्रति ईरान के कथित झुकाव के बावजूद उसके साथ नज़दीकी से जुड़े रहना भी अनिवार्य होगा। भारत के लिए यह अहम संबंध होगा और वर्तमान में अफ़ग़ानिस्तान में हो रहे नवीनतम बदलावों के चलते यह और भी ज़्यादा अहम है। इसे तीसरे पक्षों के हितों से प्रभावित नहीं होना चाहिए।

इसी के साथ, भारत को चीन के साथ अपने जुनून को यह मौक़ा नहीं देना होगा कि वह उसे अपनी राष्ट्रीय रणनीति के मुख्य लक्ष्य–भारत के रूपांतरण–से भटका दे। हमें चीन को एक ऐसे शक्तिशाली पड़ोसी के रूप में जिसके साथ हम अपनी सीमा साझा करते हैं; एक अच्छे-ख़ासे वज़नदार आर्थिक अभिनेता के रूप में लेकर चलना होगा जो भारत के बाहरी वातावरण को राजनीतिक, आर्थिक और संरचनात्मक रूप से प्रभावित करेगा। आने वाले दशक में, जब चीन लगातार हठधर्मी और राष्ट्रवादी पथ पर अड़ा है, और भारत संतुलनकारी सहयोगियों और क्षमताओं को खोज रहा है, तो चीन के साथ जुड़ाव और प्रतिद्वंद्विता के संयोजन का कोई व्यवहार्य विकल्प नहीं होगा।

मध्य शक्तियां

इस हठी चीन से निपटने में, मध्य शक्तियां–जापान, ऑस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया, कोरिया, वियतनाम और अन्य–व्यापक गठबंधनों के स्वाभाविक सहयोगी हैं जो अब व्यवस्था में हैं। इनमें से अनेक चीन के उत्थान के चारों ओर बढ़ती आर्थिक और राजनीतिक अनिश्चितता, साथ ही इसके हालिया व्यवहार पर भारत की बेचैनी को बांटते हैं। इन सभी के पास महत्वपूर्ण क्षमताएं हैं और वे उन्हें प्रयोग में लाने के इच्छुक हैं। मगर फिर भी वे इसे लेकर अनिश्चित हैं कि सुरक्षा संकटों, अमेरिका की घटती संलिप्तता, और विखंडित घरेलू राजनीति से त्रस्त एशिया में ये कैसे करें। इन मध्य शक्तियों में से हितबद्ध और इच्छुक देशों का गठबंधन स्थापित करने की भारत की क्षमता भावी चुनौतियों से निपटने में अहम होगी।

यूरोप

यूरोप भी इस बृहद प्रयास का हिस्सा बनने का फ़ैसला कर सकता है, हालांकि यूरोपीय संघ यह कैसे करेगा, यह अभी भी अनिश्चित है। संकेत मिले-जुले हैं, जिनमें दिसंबर 2020 में चीन के साथ यूरोपीय संघ के निवेश समझौते से लेकर प्रौद्योगिकी अस्वीकरण नीतियां और साइबरस्पेस और गवर्नेंस के मापदंड स्थापित करने के प्रयास तक शामिल हैं, जो

यूएस और चीन में यूरोप के वाणिज्यिक हितों से टकराएंगे। हालांकि इसकी संभावना कम है कि यूरोपीय संघ एशिया की राजनीति में एक अहम घटक बन पाएगा या सैन्य शक्ति को संतुलित कर सकेगा, मगर इसमें एशिया में एक खुली आर्थिक व्यवस्था को सामने लाने में योगदान देने का माद्दा है। ईयू के देशों को ऐसा करने के लिए बढ़ावा देने के लिए भारत को कम महत्वाकांक्षी भारत-यूरोपीय संघ व्यापार एवं निवेश समझौते को भी पूर्ण करने में शीघ्रता करनी होगी, और यह सुनिश्चित करने की दिशा में काम करना चाहिए कि साइबरस्पेस जैसे नए क्षेत्रों में मापदंड और मानदंड न्यायसंगत और खुले रहें, जिससे सबके लिए एक समान अवसर उपलब्ध हों। यूएस, जापान और यूरोपीय संघ के साथ भारत की भागीदारी में सुरक्षा से परे भी एक आयाम है। वे पूंजी, प्रौद्योगिकी और ज्ञान-संसाधनों के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में अहम बने रहेंगे जो भारत के विकास में योगदान दे सकते हैं। प्रजातंत्र के साझा राजनीतिक मूल्य ऐसी भागीदारियों को सुगम बनाएंगे।

विकासशील देश

पिछले कुछ सालों में, विकासशील देशों से भारत के संबंध कमज़ोर हुए हैं। दक्षिण एशिया पर अगले अध्याय में चर्चा की गई है, जो कि भारत की सुरक्षा का मूल है और इसकी समृद्धि में एक बड़ा अंशदाता है। मगर उपमहाद्वीप में संबंधों का क्षीण होना अफ़्रीका, लैटिन अमेरिका और अन्य देशों से भारत के संबंधों में भी प्रतिबिंबित होता है। सौभाग्य से, महामारी के बाद इन संबंधों में सुधार लाने की कोशिशों के संकेत भी दिख रहे हैं।

आज ये संबंध पहले कभी से कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण हो गए हैं। महामारी और 2020 की आर्थिक मंदी से त्रस्त महाशक्तियां आंतरिक तनावों और चुनौतियों का सामना कर रही हैं। चीन, जो शायद एक अपवाद है, लगातार विद्वेषपूर्ण हुआ है और बहुपक्षीय प्रणाली को अपने मक़सदों के लिए मोड़ने की कोशिश कर रहा है। हमारा मानना है कि एक विघटित दुनिया को स्वीकार्य नतीजे प्रदान करने और टकरावों को टालने के लिए लचीलेपन और व्यापक गठबंधन की आवश्यकता होगी। इसके लिए भारत को विकासशील दुनिया के अपने पारंपरिक सहयोगियों की ओर एक नई पहल करनी होगी। आज वे आर्थिक अवसरों के केंद्र के रूप में, भारत के लिए आवश्यक समर्थन और वस्तुओं के स्रोत के रूप में, और बहुपक्षीय प्रणाली के उन हिस्सों को पुनर्जीवित करने के लिए आवश्यक सहयोगियों के रूप में महत्वपूर्ण हैं जो आगामी दशक में उपयोगी होंगे।

व्यवस्थाओं के बीच स्थित दुनिया वह भी है जहां नई व्यवस्थाओं की कल्पना की जा रही है–नए मानक और मानदंड स्थापित किए जा रहे हैं, ख़ासकर नए क्षेत्रों में। यह आवश्यक है कि भारत मानक और मानदंड स्थापित करने की अंतरराष्ट्रीय प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग ले। यहां भी संख्या मायने रखती है। अगर हम सहयोगियों की एक बड़ी रेंज को साथ लाने में कामयाब हो सकें, तभी भारत इस प्रक्रिया में सार्थक प्रभाव डालने की आशा कर सकता है और सुनिश्चित कर सकता है कि यह महाशक्तियों के हाथ में ही न रह जाए जिनके पास कहीं अधिक क्षमताएं हैं और विशेष निहित हित हैं।

अंतरराष्ट्रीय प्रशासन

अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के साथ भारत का जुड़ाव और बहुपक्षीय प्रणाली के लिए इसकी निरंतर वकालत, और इसमें सक्रिय भागीदारी इसकी विदेश नीति का एक स्थायी गुण रहा है। देश ने देखा है कि नियम और मानदंड आधारित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में इसके हितों को बेहतर ढंग से पूरा किया गया है, भले ही अक्सर इन्हें उल्लंघन के तौर पर देखा जाता हो। बहुपक्षीय संस्थान भारत के हित के मुद्दों पर अंतरराष्ट्रीय राय को जुटाने के प्लेटफ़ॉर्म का काम करते हैं। बदले में, भारत की बहुपक्षीय कूटनीति ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर इसे अपेक्षा से बेहतर प्रभाव डालने में सक्षम किया है। इस इतिहास के बावजूद, भारत की समकालीन विदेश नीति संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं को ऐसे स्थल के रूप में देखने के बजाय जहां भारत समान विचारधारा वाले प्रभावकों के साथ मिलकर अपने हितों को निर्दिष्ट और पूरा कर सकता था, बड़े देशों के साथ द्विपक्षीय संबंधों पर ज़्यादा बल देने लगी है। अब जबकि भारत में होने वाले घरेलू राजनीतिक घटनाक्रम पर ज़्यादा पैनी अंतरराष्ट्रीय नज़र है, तो संयुक्त राष्ट्र संघ और मानवाधिकार संघ जैसी इसकी कुछ एंजेंसियों के साथ संबंध ख़राब करने की प्रवृत्ति शुरू हो गई है। घरेलू स्तर पर अधिक मुखर राष्ट्रवादी मोड़ का अर्थ है भारत के बाहरी दृष्टिकोण में अंतरराष्ट्रीयता को एक प्रमुख घटक के रूप में पेश करने के प्रति कम उत्साह।

यक़ीनन, भारत की नीति में यह मोड़ संयुक्त राष्ट्र संघ और वैश्विक मुद्दों से निपटने वाली इसकी विशिष्ट एजेंसियों की भूमिका में भारी अवमूल्यन के बाद आया है। इन संस्थाओं को निर्धारित योगदानों द्वारा उपलब्ध होने वाले संसाधनों में लगातार कमी आई है जिससे अपने सदस्यों और बड़ी बहुराष्ट्रीय कॉरपोरेशनों द्वारा चलाई जाने वाली परोपकारी संस्थाओं पर परियोजना-आधारित वित्तपोषण पर इसकी निर्भरता बहुत बढ़ गई है। इस प्रकार, संयुक्त राष्ट्र के एजेंडा हमारे काल के वास्तविक और ज्वलंत मुद्दों के बजाय वित्तपोषण के उभरते पैटर्न से ज़्यादा प्रभावित है। ये प्रचलन संभवतः जारी रहेंगे। हमें संयुक्त राष्ट्र और इसकी सहयोगी एजेंसियों और संस्थाओं में सुधार लाने की दिशा कोई क़दम उठाए जाने की अपेक्षा नहीं है। उदाहरण के लिए, शक्ति के वर्तमान वितरण से तेज़ी से बाहर होते जाने के बावजूद, यह संभावना भी नहीं लगती कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के मौजूदा स्थायी सदस्य नए सदस्यों को उसी वर्ग में शामिल करने पर सहमत होंगे। यद्यपि भारत को स्थायी सदस्यता के लिए अपने दावे पर क़ायम रहना चाहिए, मगर ऐसा उसे आगामी दशक में इसे मंज़ूरी मिलने की अपेक्षा किए बिना करना होगा।

भारत के बाहरी माहौल और इसकी अपनी शक्ति और क्षमताओं में बड़े बदलाव आने के बावजूद, नियमों और मानकों पर आधारित एक अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था अभी भी इसके सर्वोत्तम हित में है। द्विपक्षीय या अनेकपक्षीय प्रक्रियाओं की अपेक्षा बहुपक्षीय प्रक्रियाएं अभी भी भारत की सुरक्षा और आर्थिक हितों की रक्षा को बेहतर करने और प्रोत्साहन देने के अवसर प्रस्तुत करती हैं। वे भारत को मानक निर्धारण प्रक्रियाओं को प्रभावित करने का अवसर भी प्रदान करती हैं। भारत के लिए इन प्रक्रियाओं में भाग लेना अनिवार्य है वर्ना उसे अन्यों द्वारा स्थापित

नए मानकों को स्वीकार करने, या उभरती वैश्विक व्यवस्था में हाशिए पर धकेले जाने का जोखिम लेना होगा। वैश्विक महामारी संभवतः व्यापार और निवेश, बौद्धिक संपत्ति, ख़रीद नीति, और वैश्विक वित्तीय बाज़ार के वर्तमान नियमों में महत्वपूर्ण बदलाव की ओर ले जाएगी। जलवायु परिवर्तन पर नए सिरे से फ़ोकस करने के लिए एक ऐसी वैश्विक व्यवस्था हासिल करने की दिशा में भारी प्रयास करना होगा जो भारत की विकास संभावनाओं को सीमित करने की बजाए उन्हें बढ़ाए। भारत को साइबर सुरक्षा और अंतरिक्ष आधारित संपत्तियों की सुरक्षा जैसे नए क्षेत्रों में मानक निर्धारण की गतिविधि में भी सक्रिय भाग लेना होगा। अपनी सक्रिय भागीदारी से ही भारत मौजूदा मानकों को समायोजित करने, उभरती वैश्विक व्यवस्था को प्रभावित करने और अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण में योगदान देने की स्थिति में होगा जो इसे अगले दशक में कहीं अधिक मुश्किल चुनौतियों का सामना करने में सक्षम करेगा।

यह शिक्षाप्रद है कि चीन के अहम मुद्दों को द्विपक्षीय फ़्रेम के ज़रिए सुलझाने को वरीयता देने के बावजूद (उदाहरण के लिए, द्विपक्षीय उपक्रमों के नेटवर्क रूप में दक्षिण चीन के समुद्र में आचार संहिता बनाने पर आग्रह), इसने बड़ी मेहनत से संयुक्त राष्ट्र और इसकी विशिष्ट एजेंसियों में अपना प्रभाव बनाया है: वर्तमान में चीनी नागरिक ऐसी पांच एजेंसियों के प्रमुख हैं। यह बीजिंग की इस समझ में निहित है कि अपनी कमजोरियों के बावजूद संयुक्त राष्ट्र प्रणाली अभी भी उसकी राष्ट्रीय आकांक्षाओं को अंतरराष्ट्रीय वैधता प्रदान करती है, उदाहरण के लिए, संयुक्त राष्ट्र के दस्तावेज़ों में इसकी बेल्ट एंड रोड पहल को समर्थन। एक मज़बूत और प्रभावशाली उपस्थिति शिनजियांग में उइगरों के साथ व्यवहार जैसे घरेलू मुद्दों पर असुविधाजनक प्रश्नों को दरकिनार करने को भी सक्षम बना देती है। यद्यपि भारत संयुक्त राष्ट्र में जम्मू और कश्मीर जैसे मुद्दों पर चीनी और पाकिस्तानी दबावों को दूर करने में सक्रिय और सफल भी रहा है, मगर इसकी भूमिका कमज़ोर हुई है और अधिक संव्यवहारित हो गई है। जलवायु परिवर्तन, सामूहिक विनाश के हथियारों का अप्रसार, समुद्री सुरक्षा, साइबर और अंतरिक्ष सुरक्षा–इन सबसे भारत के अपने सुरक्षा हित भी प्रभावित होते हैं–जैसे कई अहम मुद्दों पर सक्रिय और यहां तक कि नेतृत्व की भूमिका भी निभाते हुए, संयुक्त राष्ट्र और इसकी एजेंसियों में एक उच्च प्रोफ़ाइल को अपनाने में भारत को कुछ गंवाने की अपेक्षा लाभ कहीं अधिक हैं। फ़िलहाल इन मुद्दों पर कोई सुविचारित नीतिगत घोषणा नहीं हुई है। आने वाले दशक में, विदेश नीति के एजेंडा में इसे ऊपर होना चाहिए।

हाल ही में भारत दो वर्ष के लिए सुरक्षा परिषद का अस्थायी सदस्य बना है। यह संयुक्त राष्ट्र के साथ जुड़ने का अपना रुख़ और दिशा दोनों को निर्धारित करने का एक अच्छा अवसर है, भारत डब्ल्यूएचओ की कार्यकारी परिषद का अध्यक्ष भी है और इसके पास महामारी और उसके बाद का प्रबंधन करने के साथ-साथ ऐसे मानदंडों की स्थापना में नेतृत्व दिखाने का अवसर है जो अंतरराष्ट्रीय समुदाय को भविष्य में आने वाली स्वास्थ्य संबंधी आपदाओं के लिए बेहतर तरीक़े से तैयार रहने में सक्षम करें। एक ध्रुवीकृत अंतरराष्ट्रीय वातावरण में, भारत व्यावहारिक समाधानों में योगदान दे सकता है बशर्ते वह एक ग़ैर-पक्षपातपूर्ण और सकारात्मक दृष्टिकोण पेश करे और अपनी पहलों के समर्थन में समान सोच वाले एक

बड़े वर्ग को संगठित करने में सक्षम हो सके। पूर्व में, प्रभावशाली समान विचारधारा वाले वर्गों को लामबंद करने की क्षमता और अपने प्रारूपण कौशल के लिए भारतीय कूटनीति को बहुत सम्मान दिया जाता था। इन्हें पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

इसे शुरू करने का बेहतरीन स्थान सत्रह सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) का क्रियान्वयन है, जो नीति के क्षेत्रों से कहीं आगे जाते हैं और जो आने वाले दशक में भारत के अपने आर्थिक विकास के लिए एक सक्षम वातावरण बनाने की क्षमता रखते हैं। प्रत्येक एसडीजी के लिए, भारत इन लक्ष्यों में प्रगति करने के लिए प्रौद्योगिकी और राजनयिक प्रतिनिधित्व वाली अनेक विधाओं की टीमें गठित कर सकता है।

भारत की बहुपक्षीय कूटनीति के लिए संयुक्त राष्ट्र ही एकमात्र मंच नहीं है। जी-20 जैसे अन्य मंच भी हैं जहां भारत एक प्रमुख भूमिका निभा सकता है। भारत 2022 में जी-20 शिखर सम्मेलन की मेज़बानी करेगा। यह महामारी के बाद की दुनिया में अंतरराष्ट्रीय एजेंडा को आकार देने का अवसर प्रदान करता है। जी-20 के विभिन्न कार्य समूहों और समितियों में कई प्रमुख अंतरराष्ट्रीय मुद्दों–सब्सिडी का प्रतिपादन, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कराधान, अंतरराष्ट्रीय वित्त और बैंकिंग, हवाला, वैश्विक व्यापार और निवेश– पर मानकों की स्थापना और मापदंडों का विकास होता है। शिखर सम्मेलन के आडंबर और कोई विषय-वस्तु चुनने पर ज़्यादा ध्यान देने के बजाय नई दिल्ली को जी-20 के सदस्यों को जोड़ने और प्रभावित करने के लिए एक सारभूत एजेंडा बनाने और एक स्थायी राजनयिक अभियान तैयार करने के लिए पर्याप्त प्रारंभिक कार्य करना होना।

आगे चलकर भी, भारत के लिए यह अनिवार्य है भारतीय हितों की रक्षा करने और अपने लाभ के लिए उभरते हुए मानदंडों को आकार देने के लिए जी-20 के कार्यकारी समूहों में उसका प्रतिनिधित्व हो। इसके लिए ऐसे योग्य लोगों को जोड़ने की आवश्यकता है जो इस तरह के मंचों में होने वाली जटिल वार्ताओं के जानकार हों। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत आमतौर पर इन छोटे कार्य समूहों को या ऐसे कर्मियों को भेजता है जो न तो विचाराधीन विषयों में पारंगत होते हैं और न ही ऐसी वार्ताओं के लिए आवश्यक राजनयिक कौशल रखते हैं। जब हम एक अधिक जटिल और अपरिचित दुनिया का मार्गदर्शन करने की तैयारी कर रहे हैं तो इस सुस्पष्ट कमज़ोरी को दूर किया जाना चाहिए ।

स्थूल रूप से, भारत की जी-20 सदस्यता को प्रतिष्ठित लक्ष्यों को हासिल करने और एक ऊंचे मुक़ाम पर जगह पाने की अहं-तुष्टि के लिए नई दिल्ली को प्राप्त अवसर के रूप में नहीं बल्कि उन लोगों को आवाज़ देने के अवसर के रूप में देखा जाना चाहिए जिनकी इस महाशक्ति की प्रतिद्वंद्विता से चिह्नित अंतरराष्ट्रीय प्रणाली में कोई सुनवाई नहीं है। आने वाले दशक में बहुपक्षीय संस्थानों और विकासशील देशों के सहयोगियों के साथ नए सिरे से जुड़ाव होना भारत के वास्तविक हित के लिए कहीं अधिक महत्वपूर्ण होगा।

अध्याय 3:
सामरिक पड़ोसी देश

उपमहाद्वीप

उपमहाद्वीप भारत के लिए सबसे निकटवर्ती और अहम भू-राजनीतिक स्थान है। महा-शक्ति स्तर पाने की दिशा में विश्वसनीय मार्ग बनाने की भारत की क्षमता अपने निकटस्थ पड़ोसी देशों (जिनमें म्यांमार भी शामिल है) को संभालने में इसकी सफलता पर टिकी है। एक बृहत्तर एशियाई मंच पर भारत की संलिप्तता में दक्षिण एशिया एक बड़ा प्रतिरोध बना रह सकता है। वैकल्पिक रूप से, यह आर्थिक एकीकरण और वैश्वीकरण की चुनौतियों पर कहीं ज़्यादा आत्मविश्वास से बात करने के लिए एक कार्यशील मंच बन सकता है। क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण के लक्ष्य को प्रारंभिक बिंदु बनना होगा। और उपमहाद्वीप की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में भारत को अगुआई करनी होगी।

भारत एक बहुत अधिक विखंडित उपमहाद्वीप का हिस्सा है–ऐसा क्षेत्र जो राजनीतिक, आर्थिक, और सामरिक रूप से बंटा हुआ है। सभी देशों में सांस्कृतिक, जातीय, भाषाई और धार्मिक समानताएं होने के बावजूद, राष्ट्र निर्माण की आधुनिक प्रक्रियाओं ने पारस्परिक लाभ के लिए समानताएं तलाशने की जगह एक दूसरे के विरोध में तीक्ष्ण राष्ट्रीय पहचानें बनाई हैं। परिणामस्वरूप, दक्षिण एशियाई देशों के भीतर और उनके बीच राजनीति अनियंत्रित रही है। कुल व्यापार का सात प्रतिशत से भी कम और मात्र तीन प्रतिशत निवेश क्षेत्र के भीतर से आता है। इन देशों के सामने मौजूद सबसे अहम चुनौतियों–जलवायु परिवर्तन; पानी, ऊर्जा और खाद्य सुरक्षा; जैव-विविधता का क्षय; कोविड-19 महामारी जैसे जन स्वास्थ्य के संकट–पर क्षेत्रीय सहयोग नदारद है। क्षेत्र का सबसे बड़ा देश होने के नाते, भारत को ऐसी संस्थाओं और प्रक्रियाओं के गठन में पहल करनी होगी जो इन युगीन चुनौतियों का विश्वसनीय और प्रभावी समाधान सुनिश्चित कर सके। इसे हासिल करना भारत की 'नेबरहुड फ़र्स्ट' नीति का मुख्य केंद्र होना चाहिए।

अगले दशक के दौरान, दो अंतरसंबंधित कारकों के कारण उपमहाद्वीप के भारत के लिए सुरक्षा की एक बड़ी व्यस्तता बन जाने की संभावना है। सबसे पहले, शीत युद्ध के विपरीत, उपमहाद्वीप अब यूनाइटेड स्टेट्स और चीन के बीच टकराव के एक प्रमुख केंद्र–हिंद-प्रशांत महासागर–के ज़्यादा क़रीब है। चीन भारत को "दूसरे पाले में" चला गया मानता है। इसलिए यह भारत की क़ीमत पर और अमेरिकी प्रभाव को रोकने की ख़ातिर दक्षिण एशिया के हरेक देश में अपनी राजनीतिक, आर्थिक और सैन्य मौजूदगी को बढ़ाने की रणनीति पर प्रतिबद्ध है। दूसरे, चीन भारत के पड़ोसी देशों की घरेलू राजनीति में हस्तक्षेप करने को तत्पर है ताकि यह सुनिश्चित

कर सके कि इसके पास उनकी बाहरी नीतियों को आकार देने के लिए राजनीतिक साधन हैं। पाकिस्तान के साथ यह स्थिति लंबे समय से बनी हुई थी और अब श्रीलंका, मालदीव, और नेपाल में भी यह स्पष्ट है। असहजतापूर्ण वास्तविकता यह है कि भारत चीन द्वारा क्षेत्र में लगाए गए संसाधनों की बराबरी करने में अक्षम है। चीन के बढ़ते क़दमों को रोकने में मदद के लिए भारत को यूनाइटेड स्टेट्स और जापान जैसे देशों के सामने झुकना पड़ा, मगर यह भी पूरी तरह कारगर नहीं रहा।

भारत की नेबरहुड फ़र्स्ट की नीति हाल में हुए अनेक घरेलू घटनाक्रमों के कारण कहीं अधिक जटिल हो गई है। सबसे पहले, पड़ोसियों के साथ विदेश नीति पर घरेलू राजनीतिक और वैचारिक विवेचन अधिकाधिक हावी होते जा रहे हैं। पाकिस्तान के प्रति नीति में यह सबसे अधिक स्पष्ट है, जो एक ऐसा शक्तिशाली और विषबुझा तीर बनता जा रहा है जिससे राजनीतिक विपक्ष को निशाना बनाया जा सकता है। बांग्लादेश के साथ एक श्रमसाध्य द्विदलीय जुड़ाव, जिसने सुरक्षा और उप-क्षेत्रीय एकीकरण पर अच्छे परिणाम प्रदान किए थे, अब प्रवासन और रोहिंग्या संकट पर घरेलू राजनीतिक रुख़ से कमज़ोर पड़ गया है। नेपाल पर यह अपेक्षा पूरी तरह से ग़लत साबित हो गई है कि एक साझा हिंदू विरासत भारतीय प्रभुत्व को लेकर इसकी प्रबल चिंताओं को दूर करने में मदद करेगी। यदि विदेश नीति को घरेलू राजनीतिक बाध्यताओं के अधीन करने की यह प्रवृत्ति जारी रहती है, तो भारत स्वतंत्रता पाने के बाद पहली बार ख़ुद को अधिक अलग-थलग और चुनौतीपूर्ण स्थिति में पाएगा।

दूसरे, नेबरहुड फ़र्स्ट नीति भारत द्वारा क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण को बढ़ावा देने के प्रमुख साधन के रूप में दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) को अपनाने से–पहली एनडीए सरकार के समय से–क़रीब से जुड़ी है। यह सार्क को लेकर शुरुआती उदासीनता और संशयवाद से एक परिवर्तन था, जो इस चिंता से उपजे थे कि यह हमारे पड़ोसियों द्वारा भारत विरोधी मोर्चा खोलने और 'लामबंद' होने का मंच बन जाएगा। एक तेज़ी से बढ़ती, बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में भारत के उभरने और इसके बढ़ते क्षेत्रीय और वैश्विक प्रभाव के साथ, सार्क से जुड़े शुरुआती संशयों का स्थान अपने पड़ोसियों के साथ भारत की संलिप्तता को बढ़ावा देने के साधन के रूप में इसे उपयोग करने की इच्छा ने ले लिया। यक़ीनन, पुनर्गठन में असफलताएं और प्रयास शामिल थे। मगर, पिछले कुछ वर्षों में भारत ने संकेत दिया है कि उसने सार्क से मुंह मोड़ लिया है। इसके बजाय, फ़ोकस बीबीआईएन पहल और बिम्सटेक के तहत उप-क्षेत्रीय सहयोग पर केंद्रित हो गया है। यह नीति पाकिस्तान को अलग-थलग करने और उसकी भागीदारी के बिना क्षेत्रीय सहयोग को आगे बढ़ाने की इच्छा से प्रेरित है। यद्यपि बीबीआईएन ने कुछ ठोस परिणाम प्रदान किए हैं, मगर बिम्सटेक को अभी अपनी क्षमता को परिणामों में परिवर्तित करना बाक़ी है।

अगर नई दिल्ली सार्क को नज़रअंदाज़ करना जारी रखता है, तो इस बात का ख़तरा है कि दूसरे देश इससे जुड़े रहें और भारत के बिना आगे बढ़ जाएं। भारत की मौजूदगी के बिना यह चीन को सार्क में शामिल होने के लिए आमंत्रित करने के दरवाज़े खोल सकता है–एक ऐसा विकास जो उपमहाद्वीप में चीन

की घुसपैठ को मज़बूत कर देगा। बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) क्षेत्र को यातायात और संचार कड़ियों, चीन के नेतृत्व में एक उप-क्षेत्रीय वाणिज्यिक प्रबंधन, और क्षेत्र के मौजूदा और उभरते अनेक क्षेत्रों को चीनी मानकों और विनिर्देशों के चीनी जाल में उलझाने का मुख्य साधन बन सकता है। यह परिदृश्य आने वाले दशक के लिए हमारी उपमहाद्वीपीय नीति में शामिल होना चाहिए। इसलिए हमारी सार्क नीति की पुनर्समीक्षा एक तात्कालिक आवश्यकता है।

तीसरे, भारत की नेबरहुड फ़र्स्ट नीति राष्ट्रीय सुरक्षा, ख़ासकर सीमा सुरक्षा, को लेकर अत्यधिक चिंताओं से प्रभावित है। पिछले दशक में सीमा पार से संपर्क बेहतर होने में उल्लेखनीय प्रगति हुई है: राजमार्ग, रेलवे, डिजिटल लिंक, नदीय और तटीय जहाज़रानी का पुनरुद्धार। लेकिन सामान, लोगों और सेवाओं की सीमा पार आवाजाही को सुविधाजनक बनाने के लिए यह सीमा के परे प्रक्रियाओं और संस्थानों के सुधार से मेल नहीं खाता है। सुरक्षा कारणों से कार्गो और व्यक्तियों दोनों की लगातार और समय लेने वाली जांच के कारण इस तरह की आवाजाही में बाधा पड़ना जारी है। इन्हें व्यापक रूप से उपलब्ध इलेक्ट्रॉनिक ट्रैकिंग और निगरानी प्रौद्योगिकियों को अपनाकर, सीमाओं पर स्थायी स्कैनर लगाकर और आकस्मिक रूप से जांच करने का सहारा लेकर हल किया जा सकता है। बैंकिंग और विनिमय सुविधाओं की स्थापना, खाद्य और ख़राब होने वाली वस्तुओं के लिए सुविधाजनक परीक्षण प्रयोगशालाएं, और केंद्रीय डाटा-बेस से जुड़ी आप्रवासन जांच इन मुद्दों को हल करने में बहुत कारगर रहेगी। इन उपायों को आसानी से लागू किया जा सकता है।

चौथे, वे नीतियां सीमा पार व्यापार और सुरक्षा को कम करके आंकती हैं जो सीमा-व्यापार और सीमा के माध्यम से नियमित व्यापार के बीच तीव्र अंतर करती हैं। पहली श्रेणी सीमित मात्रा में स्थानीय सामान (जैसे सर पर ढोकर) के आदान-प्रदान पर लागू होनी चाहिए, जिस पर कोई शुल्क नहीं लगाया जाता है; दूसरी में ऐसी खेप होनी चाहिए जो आमतौर पर एक ट्रक या उससे अधिक होती है जिस पर एमएफ़एन प्रबंध लागू होता है। हालांकि, प्रमुख सीमा बिंदुओं–जैसे भारत-म्यांमार और भारत-नेपाल सीमा–पर एमएफ़एन व्यापार की अनुमति नहीं है, जबकि बिना किसी राजस्व के भारी मात्रा में सामान की बड़ी-बड़ी खेपों को गुप्त रूप से भारतीय राज्य में लाना जारी है। यह प्रतिबंधित व्यापार शक्तिशाली और सुसंगठित माफ़ियाओं के हाथों में है, जिसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार, हथियारों और ड्रग्स की तस्करी और आतंकवादियों और विद्वेषपूर्ण तत्वों की घुसपैठ होती है।

इस मार्ग से नॉर्थ-ईस्ट में बड़े पैमाने पर चीनी सामान के प्रवेश ने बेंत के फ़र्नीचर और हथकरघा जैसे स्थानीय उद्योगों को प्रभावी रूप से नष्ट कर दिया है। एमएफ़एन व्यापार की अनुमति देकर इस स्थिति को आसानी से हल किया जा सकता है। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ना चाहिए कि चीनी सामान सीमा व्यापार बिंदु से आता है या कोलकाता के बंदरगाह से। बदले में, राज्य राजस्व हासिल करेगा और संवेदनशील सीमावर्ती क्षेत्रों में भ्रष्टाचार के एक प्रमुख स्रोत को समाप्त कर देगा। इससे आर्थिक और सुरक्षा दोनों हितों की पूर्ति होगी। यह अगले दशक की हमारी नेबरहुड फ़र्स्ट नीति के एजेंडा में सबसे ऊपर रहनी चाहिए।

ऊपर बताई गई चारों चुनौतियां एक अधिक प्रभावी नेबरहुड फ़र्स्ट नीति के लिए अवसरों को भी रेखांकित करती हैं। भारत क्षेत्रीय संस्थानों को फिर से मज़बूत करने, अर्थव्यवस्थाओं को एकीकृत करने, वस्तुओं और लोगों की मुक्त आवाजाही को खोलने और जलवायु परिवर्तन के शमन और अनुकूलन का नेतृत्व कर सकता है। तुलनात्मक रूप से कोई अन्य शक्ति इस तरह के विस्तृत श्रेणी के मुद्दों पर क्षेत्रीय नेतृत्व प्रदान करने की स्थिति में नहीं है।

चीन की–भौतिक इंफ़्रास्ट्रक्चर के निर्माण, या विशाल परियोजनाओं को हाथ में लेना–शर्तों पर उससे मुक़ाबला करने की बजाय भारत को वह करना चाहिए जो चीन नहीं कर सकता: क्षेत्रीय लिंक बनाना; अपने बाज़ार, स्कूल और सेवाओं को अपने पड़ोसियों के लिए खोलना; और उप महाद्वीप में आर्थिक और राजनीतिक स्थिरता का स्रोत बनना। अगर भारत को आत्मनिर्भरता की दिशा में प्रयास करना है–जिसे वैश्विक अर्थव्यवस्था में समृद्धि के लिए प्रतिस्पर्द्धा करने के रूप में परिभाषित किया गया है–तो इसे आत्मनिर्भर भारत की बजाय एक आत्मनिर्भर दक्षिण एशिया की परिकल्पना करनी होगी। सबसे पहले तो, इसका मतलब है कि वर्तमान में चीन पर लागू निषेधों और प्रतिबंधों को "उन सभी देशों पर लागू नहीं करना जिनके साथ भारत की भूमि सीमा जुड़ी है।" इसके विपरीत, अपने परिवहन और अन्य बुनियादी इंफ़्रास्ट्रक्चर, विशेष रूप से अपने तेज़ी से बढ़ते डिजिटल इंफ़्रास्ट्रक्चर के उपयोग के लिए भारत को अपने पड़ोसियों के प्रति "राष्ट्रीय व्यवहार" का विस्तार करना होगा।

भारत अपने पड़ोसियों के साथ सार्वभौमिक पहचान प्रणाली में अपनी विशेषज्ञता साझा कर सकता है, साथ ही साइबर सुरक्षा और डाटा गोपनीयता में उनकी सहायता कर सकता है। यह अपने उन्नत समुद्री क्षेत्र जागरूकता डाटा और सैटेलाइट इमेजरी को चुपचाप साझा करके नेट सुरक्षा प्रदाता भी बन सकता है। ऐसा करने में, भारत को सार्वजनिक श्रेय या कृतज्ञता पाने के प्रलोभन से बचना होगा। विश्वास केवल ऐसे प्रयासों के ज़रिए ही बनाया जा सकता है जो अपेक्षाकृत अदृश्य हों, अन्य सरकारों की संवेदनशीलता के प्रति सतर्क हों, और उनकी सरोकारों के प्रति उत्तरदायी हों।

भारत के उप-महाद्वीपीय नीति को यह सुनिश्चित करना होगा कि यह अपने पड़ोसियों के लिए सुरक्षा और समृद्धि का प्राथमिक स्रोत रहे। इसके लिए ऐसी नीतियों की आवश्यकता है जो घरेलू राजनीतिक और वैचारिक विचारों के अधीन न हों, बल्कि एक व्यापक राजनीतिक सहमति और हमारे बाहरी हितों के व्यावहारिक आकलन पर निर्मित हों। हालांकि इस तर्ज पर शीघ्र बदलाव लाने की उम्मीद करना अवास्तविक हो सकता है, मगर हमें आशा है कि यहां सुझाए गए कुछ व्यावहारिक उपाय आने वाले दशक में हमारी नेबरहुड फर्स्ट नीति की चुनौतियों को कम करने में मदद कर सकते हैं।

पाकिस्तान

उपमहाद्वीप के नेतृत्व के लिए यह वृहद दृष्टिकोण पाकिस्तान के साथ एक लंबे और शत्रुतापूर्ण गतिरोध के साथ असंगत होगा। पहली बात तो, पाकिस्तान को शामिल किए बिना क्षेत्रीय एकीकरण की कोई भी नीति विश्वसनीय नहीं होगी। दूसरे, चीन और पाकिस्तान दोनों का भारतीय सुरक्षा के लिए मुख्य

ख़तरा मानते हुए उनका सामना करने में, दो-मोर्चों पर युद्ध की तो बात तो छोड़ें, तर्कसम्मत भारतीय प्रतिक्रिया दोतरफ़ा चुनौती को रोकना होनी चाहिए। यदि भारत की सुरक्षा के लिए मुख्य ख़तरा चीन है तो कम ख़तरे के रूप में, जहां तक संभव हो, पाकिस्तान को बेअसर कर देना चाहिए। चूंकि निकट भविष्य में भारत-पाकिस्तान संबंध प्रतिकूल ही रहने की संभावना है, इसलिए इसका प्रभावी प्रबंधन मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। इसके लिए निरंतर संलिप्तता और संवाद, आर्थिक और सांस्कृतिक संबंधों को बढ़ावा देने और विश्वास निर्माण की प्रक्रिया को फिर से शुरू करने की आवश्यकता होगी। नियंत्रण रेखा पर हाल ही में घोषित संघर्ष विराम एक स्वागत योग्य शुरुआत है।

ऐसी नीति पाकिस्तानी अभिजात वर्ग के लिए भी आकर्षक हो सकती है, उसकी शक्तिशाली सेना समेत, जो एक शक्तिशाली चीन पर अपनी चौतरफ़ा बढ़ती निर्भरता और परिणामस्वरूप अपने ख़ुद के साधनों के सीमित हो जाने को लेकर असहज होगा। भारत के साथ सीमित जुड़ाव और संबंधों में सुधार उनके हितों के लिए भी अनुकूल हो सकता है। इसलिए, जब तक पाकिस्तान के प्रति नीति के हमारे उद्देश्य नर्म हैं, तब तक बातचीत का पुनरारंभ और धीरे-धीरे व्यापार, परिवहन और अन्य श्रृंखलाओं की क्रमिक बहाली करने योग्य है।

यदि पाकिस्तान भारत में एक घरेलू कारक बना रहता है–जो बहुसंख्यक, सांप्रदायिक राजनीति के बढ़ते दायरे के साथ जुड़ा हुआ है–तो ऐसी पहल, चाहे वह कितनी ही सीमित क्यों न हो, का जारी रहना असंभव होगा। राजनीतिक नेतृत्व को पाकिस्तान के साथ संबंधों का उपयोग घरेलू राजनीतिक उद्देश्यों के लिए करने के प्रलोभन में न पड़ने के लिए एक सचेत और सजग प्रयास करना होगा।

यद्यपि पाकिस्तान की ओर से सीमापार आतंकवाद के पूरी तरह से समाप्त होने की संभावना नहीं है, मगर – यदि इसे समाप्त नहीं किया जा सकता तो–अप्रकट उपायों सहित प्रभावी आतंकवाद विरोधी प्रयासों द्वारा इसे प्रबंधित किया जा सकता है। हमारा उद्देश्य पाकिस्तान के लिए सीमापार आतंकवाद को एक महंगी और जोखिम भरी गतिविधि बनाना होना चाहिए–और इस जोखिम को विश्वसनीय बनाने के लिए पाकिस्तान के भीतर पर्याप्त संवेदनशीलताएं हैं। इस बात पर भी बल देना होगा कि पाकिस्तान के सीमापार आतंकवाद ने भारत की आर्थिक प्रगति को पटरी से नहीं उतारा है, न ही जम्मू-कश्मीर समेत इसने इसकी राजनीतिक स्थिरता को कम किया है। इसलिए यह कोई बहुत बड़ा ख़तरा नहीं है। जो भी हो, पाकिस्तान के साथ संबंधों से बचने के प्रयास से आतंकवाद के ख़तरे से निपटने में मदद नहीं मिली है।

ऐसे संबंध को बढ़ावा देने में, भारत पाकिस्तान द्वारा दक्षेस शिखर सम्मेलन आयोजित करने की इच्छा पर अपनी आपत्ति को छोड़ कर शुरुआत कर सकता है। एक अन्य मंच के रूप में यह शंघाई कोऑपरेशन ऑर्गेनाइज़ेशन का भी उपयोग कर सकता है, जिसमें दोनों देश सदस्य हैं, जहां द्विपक्षीय वार्ता आयोजित की जा सकती है। महामारी से निपटने में सहयोग एक और उपयोगी प्रारंभिक बिंदु है; इसी प्रकार जलवायु परिवर्तन का प्रबंधन साझा चिंता का एक और अत्यावश्यक क्षेत्र है। विश्वास निर्माण के विभिन्न उपायों सहित, संबंधों की क्रमिक और सुविचारित बहाली के ज़रिए पाकिस्तान के साथ सहभागिता

भारत की विदेश नीति के विकल्पों का विस्तार करेगा। संबंधों में निरंतर ठहराव केवल अन्य पक्षों, विशेष रूप से चीन के लिए भारत की बाहरी भेद्यता को बढ़ाएगा।

अफ़ग़ानिस्तान

अफ़ग़ानिस्तान में हाल में हुए राजनीतिक बदलावों के बावजूद, भारत के उपमहाद्वीपीय पड़ोसी देशों के साथ यह संपूर्ण रणनीति अभी भी वैध बनी हुई है। चूंकि अफ़ग़ानिस्तान सार्क का सदस्य है, तो हमें समझना होगा कि किस तरह इस मुक़ाम को काबुल में नई राजनीतिक व्यवस्था के साथ सहभागिता के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है और देश के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए जारी संलिप्तता के लिए और उस देश में भारत की सबसे बड़ी संपत्ति, अफ़ग़ानिस्तान के लोगों के बीच भारत की सर्वव्यापक सदाशयता को मज़बूत करने के लिए एक मंच के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। उस देश में हालात अभी भी राजनीतिक रूप से अस्थिर हैं, और तालिबान अपने पड़ोसी देशों के साथ किस तरह की नीतियां अपनाएगा, यह अभी भी अनिश्चित है। इसलिए, भारत की अफ़गान नीति पर फ़ैसला करने से पहले इस संदर्भ में ज़्यादा स्पष्टता का इंतज़ार करना बेवकूफ़ी होगी। भले ही ईरान और रूस जैसे देशों ने तालिबान के प्रति एक ज़्यादा सकारात्मक रवैया अपनाया हो, मगर उनकी चिंताएं अपनी जगह दुरुस्त हैं कि अफ़ग़ानिस्तान आतंकवाद और मादक द्यों की तस्करी का स्रोत बन जाएगा। उस देश में विकसित हो रही स्थिति का प्रबंधन करने के सिलसिले में भारत को इन देशों और अपने अन्य मध्य एशियाई पड़ोसी देशों के साथ सहयोग करना होगा।

पश्चिम एशिया

ऊर्जा क्रांति के प्रत्युत्तर में पश्चिम एशिया की राजनीति ने तेज़ी से बदलाव आया है जिसने तेल और गैस के मामले में यूएस को आत्म-निर्भर बना दिया और इस इलाक़े पर उसकी निर्भरता को कम कर दिया। अरब क्रांति और उसके बाद लंबे समय से जारी तानाशाह प्रशासनों की आंतरिक राजनीतिक उठापटक और अस्थिरता निरंतर असंतोष, नागरिक संघर्ष और आतंकवाद की ओर ले गई जिसमें राज्य और ग़ैर-राज्यीय भागीदार और प्रोत्साहक दोनों शामिल थे। पारंपरिक क्षेत्रीय शक्तियां–ईरान, इराक़, तुर्की और मिस्र–अपनी आंतरिक असुरक्षाओं से कमज़ोर हो गई हैं। मिस्र अंदरूनी तौर पर व्यस्त है; ईरान लेबनान तक फैले एक क्षेत्रीय चाप में अपने प्रभाव को बचा रहा है; तुर्की क्षेत्रीय प्रभाव हासिल करने के लिए मुस्लिम ब्रदरहुड के साथ काम करते हुए अपनी राजनीति को नया रूप दे रहा है; और इराक़ अब सीरिया, लेबनान और यमन सहित प्रभाव हासिल करने की प्रतिस्पर्धा में युद्धक्षेत्र बना हुआ है। ऊर्जा निर्यात से होने वाली आय के कम हो जाने ने उस लाभकारी स्थिति को कम कर दिया है जो सऊदी अरब और खाड़ी देशों को अंतरराष्ट्रीय प्रणाली और पश्चिम पर हासिल था। परिणाम लेवेंट से लेकर फ़ारस की खाड़ी तक जारी संकटों, गृहयुद्धों और विद्रोहों की एक श्रृंखला रहा है, जिसमें क्षेत्रीय शक्तियों ने छद्म आवरण का इस्तेमाल किया है, और रूस जैसी बाहरी शक्तियों को एक भूमिका मिली है।

इस क्षेत्र में बढ़ती अस्थिरता; अल-क़ायदा, इस्लामिक स्टेट और अन्य आतंकवादी गुटों का उदय; ईरान और खाड़ी की राजशाहियों के बीच ध्रुवीकरण–सबने भारत के लिए मुश्किल विकल्प प्रस्तुत किए हैं। नई दिल्ली ने इज़रायल, सऊदी अरब और यूएई से अपनी नज़दीकी को स्वीकार करते हुए संबंधों को समान धरातल पर रखने की कोशिश की है। आतंकवाद के प्रतिरोध और ऊर्जा संरक्षण में इससे लाभ भी हासिल हुआ है। भविष्य में देखें तो, क्षेत्रीय अस्थिरता में कमी आती दिखना मुश्किल है, हालांकि तेल के कम मूल्यों का दशक पीछे छूट गया है।

इस क्षेत्र में भारत के हित वास्तव में बहुत व्यापक हैं। सऊदी अरब और खाड़ी देशों में लगभग अस्सी लाख भारतीय रहते और काम करते हैं। भारत में आने वाली पूंजी का एक बड़ा हिस्सा वहां से आता है–ऐसा हिस्सा जो महामारी के बाद बैंक में जमा पूंजी के रूप असल में बढ़ा ही है। भारत के कच्चे तेल और गैस आयात का बहुत बड़ा हिस्सा इसी क्षेत्र से आता है, जो कि भारत की अर्थव्यवस्था की बेहतरी के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। इस तरह, इस क्षेत्र की राजनीतिक स्थिरता में भारत का आर्थिक हित निहित है। भारत की सुरक्षा गणना में प्रवासी भारतीयों के कट्टरपंथी बनने का जोखिम, उपमहाद्वीप और पश्चिम एशियाई राज्यों में चरमपंथी समूहों और उनके स्थानापन्नों के बीच संबंध, और भारत के तेल और व्यापार के लिए आवश्यक समुद्री मार्गों को सुरक्षित रखने के महत्व को शामिल किया गया है, जिससे इसे विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किया जा सके।

इनमें से अधिकांश भारतीय हितों के लिए पश्चिम एशिया में ईरान केंद्र है–चाहे वह खाड़ी देशों में शांति और स्थिरता हो जहां सबसे ज़्यादा भारतीय काम करते हैं, या मध्य एशिया में इसका प्रभाव हो, या अफ़ग़ानिस्तान में भागीदार, या चीन और पाकिस्तान दोनों के संभावित भागीदार के रूप में हो। विशेष रूप से अफ़ग़ानिस्तान और यूरेशिया महाद्वीप में भारत की पहुंच के संदर्भ में ईरान महत्वपूर्ण है। ईरान ने पहले भी पाकिस्तान द्वारा सुन्नी चरमपंथी संगठनों का भारत के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करने के प्रयासों को रोकने में मदद की है। पूर्व में, भारत ने अपने पड़ोसियों और क्षेत्रीय प्रतिद्वंद्वियों के साथ संबंध रखते हुए ईरान के साथ भी काम किया है। मगर, अमेरिकी प्रतिबंधों और ईरान पर दबाव के कारण भारत-ईरान संबंध कुछ समय से जटिल हो गए हैं। इसलिए इसी में भारत का हित है कि वह अमेरिका-ईरान दोनों देशों द्वारा जेसीपीओए को फिर से सक्रिय करने जैसे माध्यमों से उनके बीच तनाव कम करवाने की अपनी पूरी कोशिश करे। इससे इस क्षेत्र में और परमाणु प्रसार की संभावना भी सीमित होगी, और इस तरह यह भारत की सुरक्षा के लिए भी उपयोगी होगा।

पूर्व में, क्षेत्रीय टकरावों में उलझने से बचकर भारतीय हितों का ये मेल सुचारू रूप से सिद्ध होता रहा है। भू-राजनीतिक ध्रुवीकरण और हिंसा में लगातार होती वृद्धि के कारण यह काम कठिन होता जा रहा है। भारत की शक्ति बढ़ने के साथ इसके हितों का भी विस्तार होगा। इसलिए, अब समय है कि हम अपनी दिलचस्पी के प्रत्यक्ष मुद्दों पर, और उन मुद्दों पर जिनमें हम फ़र्क़ पैदा कर सकते हैं, अधिक सक्रिय रुख़ अपनाएं।

ऐसा ही एक मुद्दा फ़ारस की खाड़ी और अरब सागर के समुद्री मार्गों की सुरक्षा का है। जैसे ही यूएस ऊर्जा-सक्षम हो जाएगा, वैसे ही बहरीन में अपने

पांचवें बेड़े के रखरखाव में इसकी दिलचस्पी कम हो जाएगी और यह अपना बोझ बांटने के लिए सहयोगियों की तलाश करेगा। वर्तमान में इन आपूर्तियों पर सबसे ज़्यादा निर्भर रहने वाले देश हैं भारत, चीन, जापान और कोरिया। इन समुद्री मार्गों की सुरक्षा के लिए नई दिल्ली को अन्यों के साथ काम करने पर विचार करना चाहिए। इस तरह के प्रयास में रूस को भी दिलचस्पी होगी।

भारत को ईरान और संभवत: तुर्की के ज़रिए अफ़ग़ानिस्तान और मध्य एशिया के भूमि-मार्गों को भी सक्रिय रूप से खंगालना शुरू करना चाहिए। यह प्रयास न केवल क्षेत्र में भारत के अपने एकीकरण के लिए, बल्कि मध्य एशिया में चीन के बढ़ते सामरिक क़दमों– समुद्री क्षेत्र में भारत की गतिविधि का एक अनिवार्य तोड़– पर महाद्वीपीय प्रत्युत्तर तैयार करने के लिए भी अहम है।

द्विपक्षीय रूप से, अपनी बहुलतावादी, विविधतापूर्ण और खुले समाज से उत्पन्न सौम्य शक्ति से लाभ उठाते हुए भारत को शिक्षा और संस्कृति के प्रदाता के रूप में अपनी पारंपरिक भूमिका को फिर से शुरू करने का लक्ष्य रखना चाहिए। हमें पश्चिम एशियाई देशों और भारत के अभिजात्य वर्ग के लिए हिस्सेदारी बनाने और इसकी प्रगति पर काम करना चाहिए। धीमी विश्व अर्थव्यवस्था में, उनके निवेश के लिए हमें भारत को एक अधिक आकर्षक स्थान बनाने में सक्षम होना चाहिए।

दक्षिण पूर्व एशिया

दक्षिण पूर्व एशिया में भारत कहीं ज़्यादा पेचीदा हालात का सामना कर रहा है जहां जोखिम ज़्यादा हैं और सभी बड़ी शक्तियां संलिप्त हैं। आने वाले दशक में, राजनीतिक टकरावों के साथ-साथ यह क्षेत्र वैश्विक अर्थव्यवस्था के खिंचाव का केंद्र बन जाएगा। इस क्षेत्र में भारतीय हितों को केवल राजनीतिक और आर्थिक संलिप्तता के प्रति प्रतिबद्धता से ही साधा जा सकेगा।

इन हितों में शांतिपूर्ण सीमाओं, किसी एक शक्ति से नियंत्रित एशिया को रोकने, और भारत के अपने रूपांतरण के लिए सबसे ज़्यादा गतिशील अर्थव्यवस्थाओं से जुड़ने के आर्थिक लाभों का दोहन करने की आकांक्षा शामिल है। अगर हमें अपने निर्यात की बढ़ोतरी में आई गिरावट को रोकना है, तो दक्षिण पूर्व एशिया से गुज़रने वाली वैश्विक आपूर्ति और मूल्य श्रृंखलाओं से जुड़ना अनिवार्य है। उसी प्रकार, हिंद महासागर और उपमहाद्वीप की सुरक्षा दक्षिण पूर्व एशिया और हिंद-प्रशांत महासागर में निहित है। चीन-यूए विवाद का यही वास्तविक मूल है - एशियाई महाद्वीप या भूभाग नहीं। दक्षिण पूर्व एशिया निवेश, इंफ्रास्ट्रक्चर निर्माण, और ऊर्जा एवं कच्चे माल की आपूर्ति के स्रोत के रूप में भी महत्वपूर्ण है। अगर भारत चीन पर अपनी निर्भरता कम करने के लिए गंभीर है, तो इसे दक्षिण पूर्व एशिया में अपने सहयोगियों के साथ नज़दीकी से काम करना होगा।

यह भी आवश्यक है कि भारत अब दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ अधिक सक्रिय रूप से जुड़ने के लिए एक रणनीति बनाए जो आरसीईपी में जाने का रास्ता तैयार करे। इस बीच, हमें आसियान, जापान, ऑस्ट्रेलिया और कोरिया को आर्थिक मोर्चे पर सक्रिय रूप से शामिल करना चाहिए। अतीत में हुई ग़लत शुरुआतों को देखते हुए, अपने दक्षिण पूर्व एशियाई भागीदारों के सामने एक सक्रिय संलिप्तता रणनीति को लागू करने की - शायद नए उद्देश्य के अनुरूप बनाए गए तंत्र के माध्यम से - भारत की इच्छा और क्षमता को प्रदर्शित करना आवश्यक होगा। यदि नहीं, तो हम फिर से मौक़ा चूकने का जोखिम उठाएंगे, जैसा कि हमने 1970 और 80 के दशक में किया था जब जापान ने इस क्षेत्र में विनिर्माण और आपूर्ति श्रृंखलाओं का निर्माण शुरू किया था।

भारत के मज़बूत पक्षों और यूएस और चीन, जिनसे वर्तमान में वे बचाव कर रहे हैं, के बीच दोहरे चुनाव के विकल्प पाने की क्षेत्र की इच्छा का लाभ उठाते हुए दक्षिण पूर्व एशिया के प्रति भारत को अपनी रणनीति में राजनीतिक, सैन्य, आर्थिक और सौम्य शक्ति को शामिल करना होगा। विकल्पों के लिए दक्षिण पूर्व एशियाई देशों की इच्छा के ज़ोर पकड़ने की संभावना है क्योंकि अगले दशक में उत्तर पूर्व एशिया द्वारा उस क्षेत्र में प्रमाणवीकरण में तेज़ी लाने की संभावना है।

जहां तक समुद्री सुरक्षा, साइबर सुरक्षा, आतंकवाद का मुक़ाबला करने और एक खुले और बहुलतावादी दक्षिण पूर्व एशिया में भारत के व्यापक हितों का सवाल है, तो इसके लिए हित और क्षमता के अनुसार गठबंधनों में काम करने की आवश्यकता होगी। आसियान, ख़ासतौर से इंडोनेशिया, वियतनाम और सिंगापुर ऐसे प्रयास के केंद्र में होंगे, जिसमें सुदृढ़ीकरण और वार्ताएं जो कि क्वाड में (जापान, यूएसए और ऑस्ट्रेलिया के साथ) शुरू हो चुकी हैं, और द्विपक्षीय सुरक्षा भागीदारियों के जाल की आवश्यकता होगी जो 2005 से भारत ने हिंद-प्रशांत महासागर के आर-पार स्थापित की हैं।

पिछले दो दशक से अधिक काल में, एशिया-पैसिफ़िक ने इतिहास में अस्त्रों का सबसे बड़ा, अधिकांशत: मिसाइल और पनडुब्बियों जैसे मारक हथियारों का, जमावड़ा देखा है। इसी काल में सेनकाकु/दिआओयू द्वीपों से लेकर ताइवान, दक्षिण चीनी समुद्र, और भारत-चीन सीमा तक हिंसा और विवाद के क्षेत्र सक्रिय हो गए हैं। अब इंडो-पैसिफ़िक कहे जाने वाले भू-राजनीतिक क्षेत्र का लगातार सैन्यीकरण होता जा रहा है। 2014 से, परमाणु पनडुब्बियों समेत चीनी पनडुब्बियां हर साल हिंद महासागर में आ रही हैं। इस क्षेत्र ने पूरे हिंद महासागर में बंदरगाहों और अन्य दोहरे उपयोग के इंफ़्रास्ट्रक्चर का निर्माण और अनेक शक्तियों की बढ़ती नौसैनिक गतिविधियों को भी देखा है। जब इसे चीन-जापान, जापान-कोरिया, उत्तर और दक्षिण कोरिया, चीन-ताइवान, चीन-वियतनाम, चीन-भारत, भारत-पाकिस्तान के बीच सुरक्षा संकटों की श्रृंखला पर आरोपित किया जाता है, तो यह स्पष्ट है कि स्थिति मूलभूत रूप से बदतर हो गई है और दक्षिण-पूर्व या उत्तर-पूर्व या दक्षिण एशिया जैसे उप-क्षेत्रों में विभाजन ने ख़तरनाक ढंग से उस एकल युद्ध स्थान को धुंधला दिया है जो मिसाइल और अन्य क्षमताओं ने पूरे एशिया-पैसिफ़िक को बना दिया है।

हमें नहीं लगता कि अगले दशक में एशिया-पैसिफ़िक में कोई बड़ा शक्ति-युद्ध होने की संभावना है। मगर

यह यक़ीनन दस साल पहले की अपेक्षा ज़्यादा संभाव्य है। अधिकांश परिदृश्यों में युद्ध से होने वाले संभावित लाभों और इसकी लागत में मेल खाने की संभावना नहीं है। इसलिए, थोड़ी सी भी विवेकशीलता को मानते हुए एक महान शक्ति युद्ध की संभावना नहीं लगती। यह, निश्चय ही, दुर्घटनाओं, ग़लत आकलनों और बेवकूफ़ियों की संभावना को कम नहीं करता है। न ही यह हिंसा के अन्य रूपों और स्तरों, साइबर और अन्य क्षेत्रों में विवाद, और सुरक्षा के लिए बढ़े हुए ख़तरे और युद्ध के जोखिम को नकारता है। (ताइवान इस पूर्वानुमान का अपवाद है, जहां चीन में घरेलू राजनीतिक आंदोलन, और उभरते चीन के विरुद्ध पहली द्वीप श्रृंखला पर नियंत्रण से अमेरिकी/जापानी भू-राजनीतिक हितों का टकराव 2035 तक संघर्ष का वास्तविक जोखिम पैदा कर सकता है।) भारत के पास कोई विकल्प नहीं है। अलावा– सैन्य, राजनीतिक, संस्थागत और आर्थिक– रूप से ख़ुद को मज़बूत करने की तीव्र और सचेत प्रक्रिया द्वारा इस भविष्य के लिए स्वयं को तैयार करने के, जैसा कि इस दस्तावेज़ में किसी अन्य स्थान पर भी कहा गया है।

हिंद महासागर क्षेत्र

यद्यपि खुली भौगोलिक स्थिति और अनेक भागीदारों की उपस्थिति ने अब तक हिंद महासागर क्षेत्र में एक प्रकार से भूराजनीतिक संतुलन बना रखा है, मगर पश्चिम और पूर्व दोनों तरफ़ से यह कमज़ोर और संकट में है। क्षेत्र में बढ़े हुए टकराव और प्रतिद्वंद्विता के दौर में – उपमहाद्वीप और हिंद महासागर के अब चीन-यूएस मुक़ाबले का अखाड़ा बन जाने के साथ– भारत के पास हिंद महासागर की सुरक्षा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता बढ़ाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। 2020 की बसंत से नियंत्रण रेखा पर जारी चीन के बर्ताव की तरह, हमें हिंद महासागर क्षेत्र में संसाधनों और सावधानी में कमी लाने पर मजबूर करने वाली कोई गतिविधि नहीं होने देनी चाहिए। अगर कुछ है तो, भारत की सुरक्षा और समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण इस मंच पर भारत के नए दबाव के लिए अतिरिक्त संसाधनों की आवश्यकता होगी। इसके लिए श्रीलंका, मालदीव और अन्य समुद्री पड़ोसी देशों के साथ पहले ही शुरू हो चुकी प्रक्रिया को तेज़ करके; बांग्लादेश, म्यांमार और दूसरे समुद्र-तटीय देशों के साथ समुद्री सुरक्षा सहयोग को समान स्तर पर लाकर; और यूएस के साथ और घनिष्टता के साथ काम करके भारत को सभी उपलब्ध सहयोगियों के साथ काम करना होगा।

पिछले डेढ़ दशक में भारत ने हिंद महासागर में सुरक्षा तालमेल बनाने के लिए कई पहल की हैं। इन्हें अब और विस्तृत बनाया जा सकता है। बंगाल की खाड़ी में समुद्री पहल के लिए समय अनुकूल है। सुरक्षा विकल्प और साधन हमारे पास मौजूद है: समुद्री क्षेत्र जागरूकता से एचएडीआर तक, एसएआर और समुद्री डकैती प्रतिरोध से लेकर, आतंकवाद के मुक़ाबले और संयुक्त संचालन तक। इस तरह की पहल को न केवल सुरक्षा संकटों को दूर करना होगा, बल्कि समृद्धि में भी योगदान करना होगा। मत्स्य उद्योग, संधारणीयता और नीली अर्थव्यवस्था को इस पहल में लाना होगा। सफल होने के लिए, भारत की इस तरह की पहल को इसमें शामिल अन्य देशों के लक्ष्यों में योगदानकर्ता के रूप में देखा जाना चाहिए और इसलिए इसे

उनके साथ बनाया जाना चाहिए। महत्वपूर्ण उद्देश्य यह होना चाहिए कि हिंद महासागर को एक व्यापारिक क्षेत्र और एक समुद्री मार्ग के रूप में रखा जाए, और किसी एक शक्ति को उस पर हावी न होने दिया जाए, जो इसे युद्ध क्षेत्र में (जैसे दक्षिण चीन सागर अब भारी तादाद में सैन्यीकृत चीनी झील है) परिवर्तित कर सकता है।

क्रियान्वयन में आने वाली पिछली समस्याओं को, साथ ही परियोजनाओं और पहलों में तालमेल की कमी को देखते हुए, हम फिर से भारत की समुद्री क्षमताओं के विकास का दिग्दर्शन करने के लिए एक समुद्री आयोग की स्थापना की अपनी सिफ़ारिश को दोहराएंगे, जिसमें महासागर विकास, तटीय इंफ्रास्ट्रक्चर, जहाज़रानी उद्योग और नौसैनिक क्षमता शामिल होने चाहिए।

अध्याय 4:
कठोर शक्ति

भारत की कठोर शक्ति की प्रमुख भूमिका युद्ध को रोकना है, और, अगर यह असफल रहे, तो राजनीतिक उद्देश्य हासिल करने के लिए बल प्रयोग करना है। भारत के विरोधी, पाकिस्तान और चीन, परमाणु शक्ति हैं और परमाणु के साये में बल प्रयोग को अपने दायरे, पैमाने और घातकता के अनुरूप बनाना होगा। मगर, अपनी पहले बम प्रयोग न करने की (एनएफ़यू) दीर्घकालिक नीति के आधार पर भारत परमाणु अस्त्रों से पूरित पारंपरिक युद्ध की तैयारी करना टाल नहीं सकता।

अगले दशक में भारत की कठोर शक्ति को बढ़े हुए वैश्विक और क्षेत्रीय तनावों से उत्पन्न चुनौतियों से निपटना होगा। निकटवर्ती पड़ोसी देशों के अलावा, विवादित भौगोलिक स्थान हिंद-प्रशांत महासागर के समुद्री इलाक़ों, विशेष रूप से दक्षिण चीन सागर, को भी शामिल कर सकते हैं, जिसके लिए हमारे भू-राजनीतिक उद्देश्यों को साझा करने वाले देशों के साथ अंतर-प्रचालनीयता की आवश्यकता होगी।

यद्यपि युद्ध की प्रकृति–राजनीतिक उद्देश्यों के लिए बल प्रयोग के रूप में–बनी रहेगी, मगर युद्ध का बदलता स्वरूप मुख्य रूप से प्रौद्योगिकी, नवीन सैद्धांतिक अवधारणाओं और लचीली संगठनात्मक संरचनाओं द्वारा संचालित होगा। परमाणु हथियारों की उपस्थिति भी युद्ध से कमतर साधनों के माध्यम से बल प्रयोग के लिए प्राथमिकता को बढ़ाएगी– एक ऐसी रणनीति जिसका लक्ष्य बल-प्रदर्शन की मदद से छल-कपट और आकस्मिकता के माध्यम से मनोवैज्ञानिक प्रभावों को प्राप्त करना होगा। कठोर शक्ति के पारंपरिक सार को बनाए रखते हुए, सैन्य शक्ति ग़ैर-गतिज साधनों के संयोजन के रूप में अधिकाधिक उपयोग की जाएगी: विशेष रूप से अत्याधुनिक तकनीकों जैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता, क्वांटम कंप्यूटिंग, जैव प्रौद्योगिकी आदि द्वारा प्रबलित विद्युत-चुंबकीय स्पेक्ट्रम का उपयोग। साइबर और अंतरिक्ष को शामिल करने के लिए ख़तरों का दायरा भूमि, समुद्र और वायु के अपने पारंपरिक क्षेत्रों का विस्तार करना जारी रखेगा।

हमारी उत्तरी सीमाओं पर चीन से ख़तरा या तो थोड़ा-थोड़ा हिस्सा हथियाते रहने के रूप में या त्वांग, देपसांग या सिलीगुड़ी कॉरीडोर जैसे क्षेत्रों पर क़ब्ज़ा करने के लिए एक बड़े हमले के रूप में सामने आ सकता है। सलामी रणनीति, जिसका उद्देश्य निर्जन क्षेत्र को हथियाना है, अब तक उनका पसंदीदा तरीक़ा रहा है। तिब्बत में सड़कों और सैन्य इंफ्रास्ट्रक्चर का एक विशाल नेटवर्क बनाने के बाद, चीन उत्तरी सीमा का उपयोग करके भारत को अपने स्वयं के इंफ्रास्ट्रक्चर को मज़बूत करने और एशिया में कहीं और अपना प्रभाव आज़माने से रोकने के लिए कर रहा है।

चीन की रणनीति का एक अन्य पहलू भारत के सामरिक पड़ोस, विशेषकर हिंद महासागर के तटीय क्षेत्रों, पर उसका बढ़ता प्रभाव है। पाकिस्तान एक लंबे समय से उसका मित्र देश रहा ही है, और अब चीन चीन-पाकिस्तान-आर्थिक गलियारे (सीपीईसी) में पूंजी निवेश कर रहा है, जो पूरा होने पर हिंद महासागर में एक सैन्य बेस तैयार करने के साथ ही, शिनजियांग से ग्वादर और कराची तक हिंद महासागर के लिए एक भूमि मार्ग प्रदान करेगा। चीन ने नेपाल, म्यांमार, भूटान, श्रीलंका और हिंद महासागर के तटवर्ती अन्य देशों में भी अपना प्रभाव बढ़ाया है। इस सबका उद्देश्य भारत को उपमहाद्वीप तक सीमित रखना और चीन की "मलक्का मुश्किल" को बढ़ाने की उसकी क्षमता को कम करना है।

पाकिस्तान से ख़तरा मुख्य रूप से आतंकवाद है– जिसका उद्देश्य भारत की सैन्य श्रेष्ठता को बेअसर और धीरे-धीरे कमज़ोर करना है। पाकिस्तान इस आशा से आतंकवाद का इस्तेमाल करता है कि परमाणु हथियारों की मौजूदगी भारत की प्रतिक्रिया पर अंकुश लगाए रहेगी। पिछले एक दशक में, पाकिस्तान ने चीन की सहायता से नौसेना सहित अपनी पारंपरिक सैन्य क्षमताओं को मज़बूत किया है।

राजनीतिक मार्गदर्शन

भारतीय सेना आकार में बहुत बढ़ी है, मगर कई समस्याओं के कारण इसके आधुनिकीकरण में बाधा आ रही है: नागरिक-सैन्य संबंधों में गहन समस्याओं से उपजे राजनीतिक मार्गदर्शन का अभाव; अंतर-बल सहयोग का उच्च-स्तरीय न होना; एक अक्षम और जटिल अधिग्रहण प्रक्रिया; कमज़ोर शोध एवं रक्षा औद्योगिक बेस; बढ़ता मानवशक्ति व्यय जिससे सेना के आधुनिकीकरण पर पूंजी व्यय के लिए कुछ नहीं बचता।

राष्ट्रीय सुरक्षा सिद्धांत/रणनीति की ग़ैरमौजूदगी ने सेना के योजना-निर्माण को अपंग बना दिया है। राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार बोर्डों द्वारा अनेक प्रारूप तैयार किए गए हैं, मगर राजनीतिक अनुमोदन अप्राप्य रहा है। 2018 में, राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार की अध्यक्षता में रक्षा योजना समिति को ऐसा ही दस्तावेज़ तैयार करने का काम सौंपा गया था। उसके बाद इसका कोई अता-पता नहीं है।

इस बीच, रक्षा मंत्री के प्रचालन निर्देश ही सेना का मार्गदर्शन कर रहे हैं। लेकिन इस दस्तावेज़ की भी अपनी कमियां हैं: यह सेना की ओर से आया है; इसे राष्ट्रीय सुरक्षा प्रणाली में औपचारिक रूप नहीं दिया गया है; यह अक्सर विशुद्ध सैन्य अवधारणा पर केंद्रित होता है और स्वीकृत राजनीतिक उद्देश्यों का सार होता है; और अंत में, इसे केवल रक्षा मंत्री का अनुमोदन प्राप्त होता है। बदले में, सेना की द्विवार्षिक, पंचवर्षीय और पंद्रह-वर्षीय योजनाएं आधुनिकीकरण के लिए रक्षा मंत्री के निर्देशों से संकेत लेती हैं। इस नीति का मुख्य दोष सेना के आधुनिकीकरण को आकार देने वाले समग्र दृष्टिकोण, और एक सुनियोजित रणनीति का अभाव है जो बल-प्रयोग पर सिद्धांत द्वारा निर्देशित हो।

बल-प्रयोग पर सिद्धांत

आने वाले दशक में वैश्विक और क्षेत्रीय भूराजनीति में अस्थिरता बढ़ने की संभावना है। जब अंतर्निहित शक्ति संरचनाएं और स्थापित संतुलन भंग होंगे तो बल का सहारा बढ़ेगा। प्रतिरोधी साधनों के विकास

को आकार देने और उनके अनुप्रयोग को निर्देशित करने के लिए बल-प्रयोग पर एक भारतीय सिद्धांत होना आवश्यक है।

बल कई रूप ले सकता है: गतिज, ग़ैर-गतिज या दोनों का मेल। बल की तैयारी और प्रयोग में परमाणु हथियारों की मौजूदगी का संज्ञान रखना होगा, जो बल की उपयोगिता को सीमित करते हैं। बल की भूमिका अन्य प्रशासनिक साधनों के साथ तालमेल रखते हुए राजनीतिक उद्देश्य प्राप्त करना होनी चाहिए।

भारत की क्षेत्रीय अखंडता, इसकी संप्रभुता, और दुनिया के साथ इसकी पारस्परिक निर्भरता में आने वाली अहम समस्याएं वे प्रमुख क्षेत्र हैं, जहां बल का सहारा लेना आवश्यक होगा। उन समस्याओं की एक उदाहरणात्मक सूची इस प्रकार है जिन पर कार्रवाई आवश्यक होगी:

- यथास्थिति में किसी भी बदलाव के कारण भूक्षेत्र की हानि।
- आतंकवाद के कृत्य।
- बल-प्रयोग न करने के समझौतों का उल्लंघन।
- महत्वपूर्ण इंफ़्रास्ट्रक्चर और सामरिक संपत्तियों पर ग़ैर-गतिज हमला।
- सामुद्रिक, भूमि और वायु मार्गों से, विशेषकर हिंद-प्रशांत महासागर में, व्यापारिक मार्गों को सुरक्षित करने के लिए।
- विदेशों और वैश्विक समान हित के क्षेत्रों में संपत्तियों की सुरक्षा के लिए।
- आंतरिक सुरक्षा को चुनौतियां।

बल-प्रयोग से हासिल होने वाले कुल उद्देश्य राजनीतिक रूप से तय किए जाएंगे, लेकिन इसे किसी एकीकृत संस्थात्मक व्यवस्था में स्थापित एक सतत राजनीतिक-सैन्य वार्ता के माध्यम से निर्धारित किया जाना चाहिए। इसके लिए राजनीतिक रूप से वांछित उद्देश्यों और सैन्य रूप से प्रदत्त किए जा सकने वाले परिणामों के बीच अभिसरण होना चाहिए। संसाधनों की उपलब्धता और बल-प्रयोग पर प्रतिबंध राजनीतिक रूप से निर्धारण किए जाएंगे। नियमित राजनीतिक-सैन्य संवाद द्वारा बल की तैयारी और उसके प्रयोग पर कड़ी निगरानी रखने से उद्देश्यों और लगाए गए प्रतिबंधों दोनों में समायोजन संभव हो सकेगा।

बल-प्रयोग करने में, एक क्षेत्र के रणनीतिक लाभों का उपयोग दूसरे क्षेत्र में प्रतिपक्षी की कार्रवाइयों का जवाब देने के लिए किया जा सकता है। भारत जैसे उचित समझे वैसे उसे मित्र देशों की सैन्य सहायता की मांग का जवाब देना चाहिए। सामरिक सहयोगियों के साथ बल के समन्वित प्रयोग का सहारा पूर्व समझौते और समझ के साथ लिया जाना चाहिए। बहुपक्षीय संदर्भ में, भारत के सैन्य बलों को संयुक्त राष्ट्र की कमान के तहत रखा जा सकता है या आपसी समझौतों के तहत सामरिक सहयोगियों के साथ काम किया जा सकता है। परमाणु हथियारों का उपयोग परमाणु सिद्धांत द्वारा नियंत्रित होगा।

आधुनिकीकरण एवं संरचनात्मक सुधार

अब तक भारतीय सशस्त्र बलों के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सेना की भीतरी खींचातानी के साथ-साथ सैन्य और नागरिक नौकरशाही के बीच संघर्ष का शिकार रही है। हालांकि, 2020 की शुरुआत में आरंभ किए गए संरचनात्मक और संस्थागत सुधार आमूलचूल परिवर्तन की कुछ उम्मीद हैं। लेकिन अभी

भी, वास्तविक आधुनिकीकरण के प्रयास में अनेक चुनौतियां मौजूद हैं: रक्षा सौदों में भ्रष्टाचार के प्रति राजनीतिक संवेदनशीलता, जिसने एक प्रक्रियात्मक संकट पैदा कर दिया है; राजनीतिक और नौकरशाही दृष्टिकोण जो परिणामों पर प्रक्रिया को वरीयता देता है; और बाद में होने वाले राजनीतिक उत्पीड़न और सज़ा की आशंकाओं के कारण नेताओं और नौकरशाहों का जोखिम लेने से बचना।

अब तक के सबसे आशाजनक रक्षा सुधार हैं रक्षा प्रमुख (सीडीएस) के पद की स्थापना, रक्षा मंत्रालय (एमओडी) में सैन्य मामलों के विभाग (डीएमए) का निर्माण, और सीडीएस को थिएटर कमांड बनाने के लिए राजनीतिक जनादेश। इन सभी को *नॉनएलाइन्मेंट 2.0* में प्रस्तावित किया गया था, इसमें समुद्री क्षमताओं को बढ़ावा देने के लिए एक समुद्री आयोग के निर्माण की भी सिफ़ारिश की गई थी।

इन सुधारों को वांछित परिणाम प्रदान करने में पांच से सात साल लग सकते हैं। लेकिन फिर भी ये परिवर्तन अपने आप में सैन्य प्रभाविता को बेहतर नहीं बना सकते। इन्हें तीन प्रमुख क्षेत्रों में सुधारों द्वारा सुदृढ़ करना होगा: सैन्य रणनीति निर्माण और संयुक्त योजना निर्माण, अनुसंधान और रक्षा औद्योगिक आधार को मज़बूत करना और आधुनिकीकरण के लिए वित्तीय संसाधनों का प्रावधान।

थिएटर कमांड

थिएटर कमांड को सुगम बनाने के लिए सीडीएस को राजनीतिक जनादेश प्रदान किया गया है। चुनौती एकीकृत स्वरूप बनाने की है, जो प्रचालन परतों को कम करे, प्रत्येक सेवा के मज़बूत पक्षों से तालमेल बिठाए और संसाधनों का बेहतरीन उपयोग करे। इस प्रणाली को सैन्य शक्ति के प्रयोग में केंद्रीकृत संयुक्त योजना निर्माण और विकेंद्रीकृत निष्पादन को सक्षम करना होगा।

सैन्य रणनीति तीनों सेना प्रमुखों सहित सीडीएस के नेतृत्व में एकीकृत रक्षा कर्मचारियों के मुख्यालय (या समकक्ष स्थायी संयुक्त मुख्यालय) द्वारा सुरक्षा पर कैबिनेट समिति के समग्र मार्गदर्शन में तैयार की जाए। तत्पश्चात थिएटर कमांडों को प्रचालन संबंधी निर्देश दिए जाएं। आवश्यकता महसूस होने के आधार पर, प्रत्येक थिएटर में भूमि, वायु और नौसेना घटक कमांडरों के साथ-साथ एक साइबर एजेंसी, एक अंतरिक्ष एजेंसी और एक विशेष बल कमांडर शामिल होना चाहिए। प्रस्तावित थिएटर कमांड संरचना स्पष्ट रूप से राजनीतिक मार्गदर्शन, सैन्य रणनीति, प्रचालन निर्देश और कार्रवाई के संचालन की ज़िम्मेदारियां सौंपती है।

सैन्य रणनीति और प्रचालन सिद्धांत

सीडीएस सहित सेना के उच्चाधिकारियों को राजनीतिक नेतृत्व से परामर्श करना और यह तय करना चाहिए कि वे किस तरह के युद्धों और सैन्य संघर्षों के लिए तैयारी करें। यह, बदले में, एक और अहम प्रश्न को सामने लाएगा: भारत की महाद्वीपीय और समुद्री शक्ति में कैसा संतुलन होना चाहिए? इसका उत्तर एक ऐसी सैन्य रणनीति से निकालना होगा जो उपलब्ध संसाधनों के साथ ख़तरे की प्रकृति और राजनीतिक उद्देश्यों को संतुलित करती हो।

समुद्री शक्ति में उभयचर क्षमताओं से युक्त सुदृढ़ नौसैनिक शक्ति, व्यावसायिक जहाज़रानी, अंतर्देशीय

संयोजकता के साथ बंदरगाहों का बुनियादी तंत्र, मछली पकड़ने और समुद्री संसाधनों तक पहुंच के साथ समुद्रविज्ञानीय विशेषज्ञता शामिल है। भारत को न केवल हिंद महासागर के तटीय क्षेत्रों में बल्कि हिंद-प्रशांत महासागर में भी अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए समुद्री शक्ति पर अपना दीर्घकालिक ध्यान बनाए रखना होगा। अंतरिक्ष आयोग की तर्ज पर एक समुद्री आयोग की आवश्यकता अगले दशक में और भी ज़्यादा ज़रूरी हो जाएगी।

भारत की सैन्य रणनीति को ख़राब से ख़राब स्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए: परमाणु साये के तहत दो-मोर्चे का युद्ध, और साथ में कश्मीर में अतिरिक्त आधे मोर्चे की संभावना। इस तरह के युद्ध को नियंत्रण में विस्तार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, जो ग़लत फ़ैसलों, ग़लतफ़हमी, ग़लत धारणा और ग़लत अनुमान के परिणामस्वरूप हो सकता है। उत्तरी और पश्चिमी भूमि-सीमाओं पर सक्रिय रक्षा की प्रचालन मुद्रा को अपनाने के साथ समुद्री क्षेत्र में आक्रामक मुद्रा होनी चाहिए। यह सतही और उप-सतही क्षमताओं में संतुलित होना चाहिए, जो युद्ध से कम अभियान से लेकर सीमित युद्ध तक के संघर्ष के फ़लक में प्रभावी हों। हमारे प्रतिपक्षी एक बड़ा समन्वित आक्रमण करने की धमकी दे सकते हैं, लेकिन उनके इससे आगे जाने की संभावना नहीं है– जब तक कि मौजूदा मुद्दा परमाणु क्षेत्र तक जाने का जोखिम न लें। ऐसे ख़तरों का मुक़ाबला करने के लिए उपायों को फैलाव की सीमा को बढ़ाने का लक्ष्य रखना चाहिए। अधिक संभावना ऐसे बल के उपयोग की है जिसे कम वृद्धिकारक माना जाता है। यह साइबर, अंतरिक्ष, इलेक्ट्रॉनिक युद्ध से लेकर भौतिक क्रियाओं पर फैला हो सकता है जो यथास्थिति को बदल देगा लेकिन युद्ध को न्यायसंगत नहीं ठहराएगा।

उत्तरी सीमाओं के लिए प्रचालन सिद्धांत को निगरानी के साथ ही चीन की भूमि हथियाने की सलामी स्लाइसिंग रणनीति की त्वरित प्रतिक्रिया के रूप में जवाबी कार्रवाई की क्षमताओं में सुधार का विशेषाधिकार प्राप्त होना चाहिए। इसके लिए हमारी बुनियादी संरचना में और सुधार करना होगा, जिसे तब तक नहीं रोका जाना चाहिए जब तक कि यह किसी समझौते का उल्लंघन न करे। ऐसी कार्रवाई के लिए ब्रिगेड के आकार के समूहों में क्षमता बनानी होगी जो मोर्चे पर तैनात कोर के साथ पहले से स्थित हों और सलामी स्लाइसिंग कार्रवाई की जानकारी होते ही कोर कमांडर को प्रतिक्रिया करने की शक्ति प्राप्त हो। इस प्रक्रिया में हमें भारत से उत्तरी सीमा पर अधिक संसाधन ख़र्च करवाने की चीन की रणनीति का शिकार नहीं बनना होगा। इसके बजाय, पाकिस्तान के मोर्चे को फिर से संतुलित करके संसाधनों का उपयोग किया जाना चाहिए। मगर विडंबना यह है कि चीन को एक बड़ा ख़तरा मानने के बावजूद, भारत की सैन्य शक्ति का रुख़ पाकिस्तान की ओर झुका हुआ है। चूंकि चीन के साथ भूमि सीमाओं के सक्रिय होने की आशंका है और व्यावहारिक रूप से वहां पुलिसिंग कर्तव्यों की न्यूनतम आवश्यकता है, इसलिए राष्ट्रीय राइफ़ल्स की तर्ज पर भारत-तिब्बत सीमा पुलिस (आईटीबीपी) का सैन्यीकरण करने और इसका नाम बदलकर भारत-तिब्बत सीमा राइफ़ल्स रखने का एक मज़बूत आधार है।

पाकिस्तान की ओर से आतंकवादी कार्रवाई से निपटने की सेना की प्राथमिक भूमिका दंडात्मक है। सैद्धांतिक संदर्भ में, इसका अर्थ है सैन्य बल के बिना

प्रहार करने की क्षमता। इसके लिए विशेष बल क्षमताओं के साथ हवाई शक्ति, लंबी दूरी की मिसाइलों और तोपख़ाने जैसी आग्नेयास्त्रों के प्राबल्य की आवश्यकता होगी। ऊपरी सीमा पर, सतही क्षेत्रीय हमलों की क्षमता आवश्यक है। इसका डिवीज़न या ब्रिगेड-आकार के समूहों में रहना बेहतर होगा। इसलिए मौजूदा स्ट्राइक कोर के पुनर्निर्माण के लिए एक मज़बूत पहलू है– एक ऐसा क़दम जो उत्तरी सीमाओं पर हमारी क्षमताओं को सुदृढ़ करने के लिए संसाधन भी प्रदान करेगा।

सैन्य नेतृत्व, विशेष रूप से थल सेना, ने हमारी इच्छा को थोपने के लिए 'बड़ी लड़ाई' छेड़ने के विचारों को त्यागना मुश्किल पाया है– भले ही परमाणु साये के तहत, सैन्य बल की भूमिका केवल राजनीतिक और कूटनीतिक प्रयासों के लिए वांछित परिस्थितियां बनाने भर हो सकती है। इसलिए एक समग्र दृष्टिकोण द्वारा सूचित एक मौलिक संज्ञानात्मक बदलाव ऐसी सैन्य मांगों को दूर रखने के लिए आवश्यक है जो स्ट्राइक कोर और माउंटेन स्ट्राइक कोर के तर्क को बनाए रखती हैं। यह समुद्री क्षेत्र में अत्याधुनिक क्षमताओं को प्राप्त करने के लिए वित्तीय संसाधनों को भी मुक्त करेगा। इस तरह की सैन्य रणनीति का विकास करने के साथ ही समय-समय पर इसकी समीक्षा होनी चाहिए जो अप्रत्याशित घटनाओं के और, इससे भी महत्वपूर्ण, संसाधनों की निरंतर और यथार्थवादी उपलब्धता के अनुकूल हो।

संयुक्त योजना

सीडीएस और डीएमए का गठन समग्र परिप्रेक्ष्य के साथ संयुक्त योजना निर्माण के लिए एक अनुकूल संरचनात्मक नीति प्रदान करता है। अब तक, संयुक्त योजना निर्माण सेवा-केंद्रित योजनाओं को एक साथ जोड़ने और सीमित संसाधनों को बांटने पर समझौता करने से कुछ ही अधिक रहा है। हाल के संरचनात्मक सुधार यह सुनिश्चित करने का संकेत देते हैं कि योजनाएं शुरू से ही संयुक्त रूप से तैयार की जाएंगी।

जब सैन्य और राजनीतिक नेतृत्व में युद्ध के उन प्रकारों को लेकर स्पष्टता आ जाएगी जिनसे लड़ने के लिए उन्हें तैयार रहना होगा, तो निचले स्तर पर अधिक समझ उत्पन्न होगी। तब क्षमताओं के सेवा-विशिष्ट विकास के संकीर्ण दृष्टिकोण से मुक्त सैन्य रणनीति बनाई जा सकेगी। इसकी जगह सेना को एक संयुक्त समुदाय के रूप में लेने की अवधारणा लेगी–जहां विविध पहचान संरक्षित रहेंगी मगर एक सामान्य लक्ष्य की दिशा में एकजुट होकर काम करेंगी।

सैन्य शक्ति की दो अवधारणाओं–अवरोध एवं नियोजनीय शक्ति– को अपनाकर संयुक्त योजना का लाभ लिया जा सकता है। परमाणु हथियारों ने सैन्य रणनीति को प्रेरित किया है कि परमाणु रेखा के अंदर ही बल-अनुप्रयोग का स्थान तलाशे। सीमित पारंपरिक युद्ध और सीमित परमाणु युद्ध की भी दशकों से चर्चा की जा रही है, लेकिन ये अपरीक्षित और अप्रमाणित हैं।

दूसरी ओर अवरोध प्रतिपक्षी की निगाह में रहता है। प्रतिरोधक क्षमता की एक प्रभावी रणनीति –लचीली संरचनाओं में अंतःस्थापित और प्रभावी और अघातक कमांड और नियंत्रण प्रणाली द्वारा सुदृढ़–सैन्य शक्ति और ठोस हथियारों, मंचों, उपकरणों की एक श्रृंखला को हासिल करने के माध्यम से प्रतिशोध की क्षमता

को प्रस्तुत करती है। निश्चय ही, इस तरह की शक्ति पूरी तरह से लागू नहीं की जा सकती है, विशेषकर परमाणु शक्तियों के बीच। लेकिन अनुप्रयोग के पैमाने और जोखिम उठाने की अपनी इच्छा के बारे में प्रतिपक्षियों को अनिश्चय में रखना अवरोध की रणनीति का अभिन्न अंग है। इसलिए सवाल नियोजनीय शक्ति का है, जो आशा की जाती है कि किसी वृद्धि को बढ़ावा नहीं देगी।

नियोजनीय शक्ति उन प्रणालियों में निहित है जिनमें संघर्ष के एक विस्तार में वास्तविक बल प्रयोग के माध्यम से नियंत्रण का प्रयास किया जाता है, जिसे ऑपरेशन लेस दैन वॉर (ओएलटीडब्ल्यू) कहा जा सकता है। विशेष रूप से, हिंद महासागर में संभावित प्रतिपक्षियों के आसान लक्ष्यों के ख़िलाफ़ ओएलटीडब्ल्यू की संभावनाओं को पूरी तरह से खंगाला जाना चाहिए। साइबर स्पेस अब नियोजनीय शक्ति के लिए सबसे उपयुक्त क्षेत्र हो गया है: यह गति और संभाव्य खंडन के माध्यम से प्रभाविता को जोड़ता है। इसका उपयोग निर्णय निर्माताओं को धोखा देने, ग़लत सूचना देने, भटकाने, विवेकशून्य करने और उनके दिमाग़ पर सीधे प्रभाव डालने के लिए किया जा सकता है।

मानवशक्ति बनाम अस्त्र शक्ति

यह एक सामान्य बात है कि अस्त्र शक्ति तेज़ी से मानवशक्ति की जगह लेगी और, स्वाभाविक परिणाम के रूप में, मशीनें लोगों की जगह ले लेंगी। श्रेष्ठ प्रौद्योगिकी को अक्सर सैन्य जीत की कुंजी माना जाता है, विशेषकर समुद्र और वायु, अंतरिक्ष और साइबर स्पेस के युद्ध में। फिर भी, लंबी दूरी के अस्त्रों या अन्य साधनों के माध्यम से किए गए नियंत्रण का, बशर्ते इसके साथ आबादी को संकट में डालने वाली शारीरिक कार्रवाई न हो, सबसे अच्छा अस्थायी प्रभाव हो सकता है। राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए क्षेत्रगत नियंत्रण की आवश्यकता हो सकती है, जिसके लिए सशस्त्र सैनिकों की आवश्यकता होती है।

हमारी उत्तरी सीमाओं पर, सैन्य शक्ति की प्रमुख भूमिका इलाक़े पर नियंत्रण है। तोपख़ाने और हवाई मंचों से गुप्त जानकारी, निगरानी और अस्त्र-प्रयोग समर्थन के साथ मानव शक्ति में वृद्धि, और वायु में और भूमि पर आवाजाही के साधन सर्वोपरि हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, सक्रिय रक्षा का रुख़ अपनाने के लिए ब्रिगेड के आकार के समूहों की आवश्यकता होगी जो ज़्यादा ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पहले से मौजूद रहें और विशेष बलों के साथ तेज़ी से तैनात किए जा सकें।

इसके उलट, पश्चिमी सीमाओं पर हमें आतंकवाद के ख़तरे के जवाब में पाकिस्तान पर दंडात्मक कार्रवाई करनी होगी, जिसमें बिना दिखावे के हमला करने की क्षमता शामिल है। ऐसी क्षमता के लिए मानवशक्ति की तुलना में अस्त्र क्षमता ज़्यादा आवश्यक है। लंबी दूरी की हवाई, मिसाइल, तोपख़ाना शक्ति और विशेष बल इसके लिए सबसे उपयुक्त हैं। दूसरी ओर, इलाक़े की रक्षा के लिए और एक विस्तृत मोर्चे पर सतही हमलों के लिए मानवशक्ति की आवश्यकता होती है।

पाकिस्तान पर केंद्रित रहने के बजाय, यह आवश्यक है कि पश्चिम से उत्तर की ओर मानवशक्ति को पुनर्संतुलित किया जाए। अतिरिक्त आग्नेयास्त्र, ख़ुफ़िया

तंत्र और वाहन संपत्ति को शामिल करना होगा, जिसे एक कुशल अधिग्रहण प्रणाली द्वारा समर्थित स्वदेशी अनुसंधान और रक्षा औद्योगिक आधार के माध्यम से हासिल किया जाना अच्छा रहेगा।

अनुसंधान एवं विकास

रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) स्वदेशी रक्षा क्षमता-निर्माण के हमारे प्रयासों के केंद्र में रहा है। इसके समग्र प्रदर्शन का एक संकेतक अब अनेक दशकों से भारत के दुनिया का सबसे बड़ा अस्त्र आयातक होने की स्थिति है। आत्मनिर्भरता एक अप्राप्य लक्ष्य रहा है और लगातार बढ़ती बाहरी निर्भरता एक बड़ी सामरिक कमज़ोरी बन गई है। अनेक समितियों ने इस मुद्दे की परिवीक्षा की है और कई सार्थक सिफ़ारिशें की हैं– जिन्हें या तो दरकिनार कर दिया गया है या काट-छांटकर लागू किया गया है।

अगर एक सातत्य के रूप में देखा जाए तो अनुसंधान एवं विकास (आर एंड डी) में मूलभूत और अनुप्रयुक्त अनुसंधान, डिज़ाइन और प्रणालियों का एकीकरण शामिल होता है। कुछ अपवादों को छोड़कर, डीआरडीओ प्रायः प्रणाली एकीकरण स्तर पर मूल्य श्रृंखला के निचले सिरे पर रहता है। इसके बजाय, इसके मुख्य प्रयासों को उच्च स्तर की प्रौद्योगिकी और अनुप्रयोगों के साथ-साथ उन विकासशील प्रौद्योगिकियों पर केंद्रित होना चाहिए जिन्हें कहीं और से हासिल कर पाना मुश्किल या बहुत महंगा हो।

अब जिस अहम सुधार की आवश्यकता है वह है रणनीति और प्रचालन के कार्यों को अलग करके डीआरडीओ का पुनर्गठन। रणनीति का कार्य सैन्य रणनीति के उद्देश्यों से संचालित होना चाहिए जिसे रक्षा मंत्रालय में डीआरडीओ विभाग के सचिव के नेतृत्व में एक बहुविषयी बोर्ड रूपांतरित करे और प्राथमिकता के आधार पर रखे। डीआरडीओ जिस रूप में आज मौजूद है, उसे रक्षा अनुसंधान और विकास एजेंसी (डीआरडीए) के रूप में पुनर्नामित किया जा सकता है और इसकी अध्यक्षता बोर्ड के प्रति उत्तरदायी सीईओ कर सकता है। सीईओ को निजी या सार्वजनिक किसी भी क्षेत्र से चुना जा सकता है, लेकिन वह साफ़ ट्रैक रिकॉर्ड के साथ एक कुशल व्यक्ति होना चाहिए।

डीआरडीए को मुख्य रूप से प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल पर ध्यान देना चाहिए। इसमें ऐसे कार्यक्षेत्र होने चाहिए जो निजी क्षेत्र में रणनीतिक व्यावसायिक इकाइयों से मिलते-जुलते हों, जिन्हें इलेक्ट्रॉनिक्स, मैकेनिकल, इलेक्ट्रिकल, धातु विज्ञान, रसायन, जीव विज्ञान, एर्गोनॉमिक्स और औद्योगिक इंजीनियरिंग जैसे गहन विशेषज्ञता के विशिष्ट और कार्यात्मक क्षेत्रों के आधार पर बनाया गया हो। मगर, इन संरचनाओं में सॉफ़्टवेयर और डाटा प्रबंधन, आर्टिफ़िशियल इंटेलीजेंस (एआई), नियंत्रण स्वचालन, मेकाट्रॉनिक्स, रोबोटिक्स, बायोइंजीनियरिंग, बायोमेडिकल इंजीनियरिंग, उत्पादन और मूल्य इंजीनियरिंग, ऑप्टिक्स और ऑप्टोइलेक्ट्रॉनिक्स जैसे अत्याधुनिक क्षेत्र शामिल होने चाहिए। प्रत्येक कार्यक्षेत्र में एक प्रबंध निदेशक होना चाहिए जो सीईओ के प्रति उत्तरदायी हो। इसके अलावा, बोर्ड सीईओ के लिए उद्देश्यों को निर्दिष्ट करने और संसाधनों के आवंटन के लिए ज़िम्मेदार होना चाहिए।

पूंजी की बेहतर उपलब्धता के साथ रक्षा और वाणिज्यिक क्षमताओं के बीच बढ़ा हुआ विलयन डीआरडीए की क्षमता में तेज़ी से वृद्धि करेगा।

आर्टिफ़िशियल इंटेलीजेंस, मशीन लर्निंग, एडिटिव मैन्युफ़ैक्चरिंग, बायो-टेक्नोलॉजी, क्वांटम कंप्यूटिंग को नागरिक क्षेत्र में तेज़ी से लागू किया जा रहा है और रक्षा अनुसंधान एवं विकास प्रणाली को इसके सैन्य अनुप्रयोगों के विकास और अवशोषण को प्रोत्साहित करने के तरीक़े खोजने होंगे। एक गहन नागरिक-सैन्य विलयन एक स्पष्ट अनिवार्यता है।

सरकार के सहयोग से हमें निजी क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास ख़र्च में भारी वृद्धि करने की भी आवश्यकता है। प्लेटफ़ॉर्मों में उप-प्रणालियों के स्वदेशीकरण से आत्मनिर्भरता में उल्लेखनीय सुधार आएगा। कुछ अन्य उपाय जिन पर विचार किया जाना चाहिए इस प्रकार हैं: कर छूट का प्रावधान, अधिक संरचनात्मक और तकनीकी सहायता, अनुसंधान एवं विकास के लिए प्रयोगशाला और परीक्षण उपकरणों का शुल्क मुक्त आयात; व्यापार योग्य आईपीआर और पेटेंट, और निजी क्षेत्र को परियोजनाओं को आउटसोर्स करने की अनुमति देना।

रक्षा औद्योगिक बेस (डीआईबी)

भारत का डीआईबी पारिस्थितिकी तंत्र सार्वजनिक क्षेत्र से ही जुड़ा हुआ है, हालांकि इसके आधार को व्यापक बनाने और निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने के लिए अनेक पहल की गई हैं। एक सुदृढ़ डीआईबी पारिस्थितिकी तंत्र के निर्माण से, जिसमें भारतीय निजी क्षेत्र, एफ़डीआई-समर्थित फ़र्म और सार्वजनिक क्षेत्र शामिल हों, लंबी अवधि में बढ़ते पूंजी व्यय को कम करने में मदद मिलेगी।

व्यवहार में, निजी क्षेत्र की संस्थाओं को रक्षा उत्पादन विभाग (डीडीपी) द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को प्रदान किए गए सुरक्षा कवच के साथ संघर्ष करना पड़ता है। अधिकांश पारिस्थितिकी तंत्र में निजी क्षेत्र के केवल विक्रेताओं की भूमिका तक सीमित रहने का यह प्रमुख कारण बना हुआ है। हितों का टकराव स्पष्ट है। बड़े पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं के निर्माण के लिए आवश्यक बेहतर नागरिक-सैन्य विलयन के साथ राष्ट्रीय विनिर्माण पारिस्थितिकी तंत्र को डीआईबी से अलग नहीं रखा जा सकता और न ही रखा जाना चाहिए।

सार्वजनिक क्षेत्र की उत्पादन इकाइयों को चुनिंदा रूप से निगमित करने का एक मज़बूत पहलू है। इससे हितों का टकराव दूर होगा और निजी क्षेत्र को समान अवसर उपलब्ध होगा। सरकारी स्वामित्व-ठेकेदार संचालित मॉडल के तहत व्यवस्थाएं बनाने की भी आवश्यकता है– जो निजी मानव पूंजी को सार्वजनिक क्षेत्र की बुनियादी संरचना का उपयोग करने में सक्षम बनाएं। इन सभी क़दमों को श्रमिक संघों के विरोध का सामना करना पड़ सकता है, लेकिन यह ऐसा मसला नहीं है जिसे राजनीतिक स्तर पर हल न किया जा सके।

निजी क्षेत्र को तीन अलग-अलग स्तरों पर भाग लेना होगा: प्रमुख प्रणालियां, संयोजन/अतिरिक्त उपकरण, और घटक। उत्पाद विकास और प्रमुख प्रणालियों का उत्पादन केवल वही फ़र्म अपने हाथ में ले सकती हैं जिनके पास उच्चस्तरीय प्रौद्योगिकी, प्रबंधकीय और वित्तीय सुदृढ़ता हो। डीडीपी ने रक्षा उद्योग रत्न (आरयूआर) के रूप में निर्धारित फ़र्मों की अधिसूचना को अवरुद्ध कर दिया है। यदि भारतीय इकाइयों को प्रमुख प्रणालियों का निर्माण करना है तो इस बाधा को दूर करना होगा। इसके लिए हमें संज्ञानात्मक परिवर्तन लाना होगा कि निजी क्षेत्र को भारत की

विनिर्माण क्षमता की एक अन्य महत्वपूर्ण शाखा के रूप में देखें, न कि एक बाहरी इकाई के रूप में जिसे राष्ट्रीय उद्यम में भाग लेने के लिए लगातार अनुमति लेनी पड़ती हो।

अधिग्रहण प्रणालियां

पिछले दो दशकों में भारत की रक्षा अधिग्रहण प्रणाली भ्रष्टाचार के आरोपों से पटी हुई है। इस प्रणाली ने ख़ुद को बिज़ैन्टीन पद्धति में, जिसमें कार्यविधि और नियंत्रण परिणामों पर हावी रहते हैं, उलझाकर प्रतिक्रिया व्यक्त की है। इसके साथ ही, इसने सरकार-से-सरकार की डील का विकल्प चुना है, जो निस्संदेह अधिग्रहण का सबसे तेज़ तरीक़ा है, लेकिन प्रौद्योगिकी प्रदान नहीं करता। इसलिए, भारत की बाहरी निर्भरता जारी है। चुनौती एक ऐसी प्रणाली को अपनाने की है जो अधिग्रहण के समय को कम करे, और साथ ही स्वदेशी अनुसंधान या प्रौद्योगिकी के आयात के माध्यम से प्रौद्योगिकी का उपयोग करे।

इसलिए प्रौद्योगिकी प्राप्त करने का मार्ग एफ़डीआई को आकर्षित करने और मूल उपकरण निर्माताओं को भारत को विनिर्माण आधार के रूप में उपयोग करने के लिए लाने में निहित है। मार्च 2020 में किया गया एफ़डीआई मानदंडों का उदारीकरण एफ़डीआई को आकर्षित करने का अवसर प्रदान करता है: अब स्वचालित मार्ग के तहत 74% तक की अनुमति है। हालांकि, इसे फलीभूत होने में कम से कम पांच साल लगेंगे। तब तक, यदि आवश्यक वस्तुएं देश में उपलब्ध नहीं हुईं और उनकी तत्काल आवश्यकता हुई तो, आयात का कोई विकल्प नहीं होगा। लीज़ के विकल्प का भी लाभ उठाना चाहिए। तीनों सेवाओं को, जहां भी संभव हो, साझा प्लेटफ़ॉर्म या सिस्टम ख़रीदने चाहिए। एक बार जानकारी हो जाने के बाद, संग्रह सामरिक भागीदारी मॉडल (एसपीएम) को सुगम बनाने और भारत में विनिर्माण को स्थापित करने के लिए परिमाण और आकार प्रदान करेगा।

प्रक्रियाओं को सरल बनाने के लिए, हमें निर्णय लेने को 'सुरक्षित खेलें' से 'सुरक्षित खेल' में बदलने की आवश्यकता है। वर्तमान में, अच्छी भावना में काम करने पर भी प्रक्रियाओं का उल्लंघन करने के लिए कार्रवाई किए जाने के डर ने अधिग्रहण प्रणाली की गति और प्रभावशीलता को कम कर दिया है। ईमानदारी और दायित्व को ऐसे परिणाम प्राप्त करने के लिए अधिकारियों का मार्गदर्शन करना चाहिए जो वित्तीय बचत को प्रभावशीलता के साथ संतुलित करें। ऐसी सभी प्रक्रियाओं को समाप्त कर दिया जाना चाहिए जो मूल्य नहीं जोड़तीं। फ़ील्ड परीक्षणों को सरल बनाया जाना चाहिए और जहां भी अनावश्यक हो, उन्हें छोड़ देना चाहिए।

अधिग्रहण प्रणाली में मानव-पूंजी की समस्या को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं किया गया है, जबकि नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (सीएजी) ने इंगित भी किया है कि रक्षा अधिग्रहण "एक पार-अनुशासनिक गतिविधि है जिसमें प्रौद्योगिकी, सैन्य, वित्त, गुणवत्ता आश्वासन, बाज़ार अनुसंधान, अनुबंध प्रबंधन, परियोजना प्रबंधन, प्रशासन और नीति निर्माण में विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है।" महामारी के बाद के युग में ऐसी विशेषज्ञता अनिवार्य है, क्योंकि एक व्यवहार्य अधिग्रहण प्रणाली को स्थापित करने में बजट में अपरिहार्य कटौती एक और बड़ी चुनौती होगी।

आधुनिकीकरण के लिए वित्तीय स्थान

सैन्य ख़र्च में भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा देश है। 1990 के बाद, जीडीपी के प्रतिशत के रूप में इसका सैन्य ख़र्च 2.1% से 2.3% के बीच रहा है। फिर भी, बढ़ती मानवशक्ति लागतों ने रक्षा बजट को बिगाड़ कर रख दिया है और आने वाले दशक में बजट आवंटन में उल्लेखनीय वृद्धि करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। हालांकि, हम अभी ऐसे उपाय लागू कर सकते हैं जो अगले दस-पंद्रह वर्षों में फलीभूत होंगे। संरचनागत सुधार के अभाव में भारत का रक्षा बजट टिकाऊ नहीं हो सकता। एक दशक से अधिक समय से यह स्थिति हमारे सामने मौजूद है। सामने मौजूद ख़तरों और चुनौतियों के मद्देनज़र, हम अब इस समस्या का सामना करने से नहीं बच सकते।

भू-राजनीतिक उथल-पुथल से उपजे आधुनिकीकरण की बढ़ी हुई मांगों को बजटीय आवंटन में वृद्धि से ही पूरा किया जा सकता है। अगले दशक में कोविड के बाद की आर्थिक मंदी और प्रतिस्पर्धात्मक प्राथमिकताओं के चलते, शुरुआती वर्षों में रक्षा बजट को कम किया जा सकता है। इसके लिए मौजूदा पंचवर्षीय और पंद्रह वर्षीय रक्षा योजनाओं की समीक्षा करना आवश्यक होगा। राजनीतिक नेतृत्व को राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद (एनएससी) का उपयोग करते हुए रक्षा बजट को समग्र रूप से देखना चाहिए, और नियमित बजट आवंटन के मामलों पर निर्णय लेने के लिए केवल वित्त मंत्रालय पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। इसके अलावा, मानवशक्ति के व्यय को युक्तिसंगत बनाकर आधुनिकीकरण के लिए भी वित्तीय स्थान बनाना होगा।

लंबे समय में राजस्व में कमी

मूलभूत समस्या पेंशन का बढ़ता बोझ है, जो अब रक्षा व्यय का लगभग 24% हो गया है– पूंजी अधिग्रहण के लिए 23% के विपरीत। रक्षा संबंधी स्थायी समिति ने पहले ही लोकसभा में प्रस्तुत अपनी 33वीं रिपोर्ट 'पूर्व सैनिकों के पुनर्वास' में इस समस्या का समाधान करने और सशस्त्र बलों को युवा रखने की अनिवार्यता की सिफ़ारिश की है। इसी पर चलते हुए, हम इन्वर्स इंडक्शन मॉडल को अपना सकते हैं। पहली बार में, एक सरकारी एजेंसी भरती करती है और चुने हुए कर्मियों को पांच से सात साल तक सेवा देने के लिए सशस्त्र बलों में भेजती है। इसके बाद वह व्यक्ति मूल संगठन में वापस आ जाता है जहां उसकी वरिष्ठता सुरक्षित होती है। आदर्श रूप से, सभी सरकारी एजेंसियां इस मॉडल का हिस्सा हो सकती हैं, हालांकि केंद्रीय स्तर पर केंद्रीय सशस्त्र पुलिस बल (सीएपीएफ़) जैसे सशस्त्र संगठनों और राज्य स्तर पर भी इसी तरह के संगठनों को वरीयता दी जानी चाहिए। दूसरी बार में, सरकार अनुबंध पर सेवानिवृत्त कर्मियों को रख सकती है। तब उन्हें पेंशन काटकर वेतन मिलेगा जैसा कि राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद सचिवालय जैसे संगठनों में पहले से ही हो रहा है। यह मॉडल अधिकारियों के बजाय सैनिकों के लिए आदर्श है, क्योंकि पेंशन का बड़ा हिस्सा अधिकारी रैंक से नीचे वाले लोगों की पेंशन में जाता है।

सतर्कतापूर्ण अनुमान के अनुसार, 10 प्रतिशत इन्वर्स इंडक्शन दर से पेंशन कटौती बिल का शुद्ध वर्तमान मूल्य 1.2 लाख करोड़ रुपए आता है। राज्य और केंद्र सरकार की एजेंसियों में दस प्रतिशत सेवानिवृत्त व्यक्तियों को अनुबंध पर शामिल करने पर पहले

वर्ष में पेंशन बिल में 4152 करोड़ रुपए की कमी होगी। दूसरे वर्ष में, कमी होगी 4276 करोड़ रुपए। इस तरह हर साल पेंशन ख़र्च के बचने में बढ़ोतरी होती रहेगी।

अन्य सभी सरकारी कर्मचारियों की भांति सशस्त्र बलों के कर्मियों के लिए भी नई पेंशन योजना को लागू करने की संभावना पर फिर से विचार करने की बात हो रही है। यहां कठिनाई यह है कि नागरिक कर्मियों की तुलना में सशस्त्र बलों के कर्मियों की सेवा अवधि कम होती है।

सेना का राजनीतिकरण

समकालीन राजनीतिक और लोकप्रिय भाषण नियमित रूप से सरकार और राज्य को एक दर्शाते हैं। परिणामस्वरूप, सेना का पारंपरिक अराजनीतिक रवैया दो स्तरों पर दबाव में है: पहला, वरिष्ठ सैन्य नेतृत्व, और दूसरा, जिसमें अधिकारी वर्ग से नीचे के कनिष्ठ अधिकारियों का नेतृत्व और व्यक्ति शामिल हैं।

वरिष्ठ नेतृत्व में, राज्य और सरकार के विलय ने इस पारंपरिक दृष्टिकोण को विकृत कर दिया है कि सेना की वफ़ादारी सत्ताधारी पार्टी के साथ नहीं,संविधान के साथ होती है। इसके अलावा, व्यापक सामाजिक और वैचारिक धाराएं सशस्त्र बलों के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप पर हमला कर रही हैं।

पिछले दशक में, सेना प्रमुखों की नियुक्ति करते समय सरकार द्वारा अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के कारण वरिष्ठ नेतृत्व की प्रोत्साहन प्रणाली में एक गूढ़ बदलाव आया है, हालांकि ऐसे मामले पहले भी हुए हैं। इस तरह के चयनों में सरकार पूरी तरह से न्यायसंगत है, लेकिन बदलाव को राजनीतिक संदर्भ में देखा जाना चाहिए, जिसमें सशस्त्र बलों को राजनीतिक विचारधाराओं के साथ पहचानने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, वह स्थिति जो 2019 के चुनावों के दौरान स्पष्ट दिखी जिसने चुनावी उद्देश्य के लिए बालाकोट हमले का लाभ उठाया। सरकार के प्रति वफादारी ज़ाहिर करना और यहां तक कि प्रधानमंत्री के दृष्टिकोण के उद्धरण के साथ सार्वजनिक भाषणों की शुरुआत करना भी अब वरिष्ठ नेतृत्व के बीच असामान्य नहीं रहा। लचीले सैन्य नेतृत्व को राष्ट्रीय हितों की क़ीमत पर संकीर्ण दलगत-राजनीतिक उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किए जाने का ख़तरा है। सैन्य नेतृत्व के लिए यह मुद्दा आत्मनिरीक्षण करने और सुधार लाने का है।

एक संस्था के रूप में सेना को राष्ट्र की बहुसंख्यकवादी अवधारणा के ख़िलाफ़ अन्य कर्मियों को भी संरोपित करना चाहिए। यद्यपि सोशल मीडिया तक पहुंच के कारण सैनिकों ने राजनीतिक संवेदनशीलता बढ़ा दी है, फिर भी संस्थागत रूप से उनके सामूहिक व्यवहार को भारतीय सेना की धर्मनिरपेक्ष परंपराओं को प्रतिबिंबित करने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए। इसके लिए भी वरिष्ठ सैन्य नेतृत्व को समस्या के अस्तित्व को मानने और इस प्रवृत्ति को बदलने के लिए काम करना होगा।

यह विश्वास करना ख़तरनाक है कि एक अराजनीतिक व्यावसायिक संस्थान के रूप में सेना का ऐतिहासिक आचरण स्वाभाविक रूप से इसका बचाव करेगा– नवीन सामाजिक और प्रौद्योगिकी प्रवृत्तियों के सामने भी। हाल के दिनों में, नेताओं ने अपने विभाजनकारी उद्देश्यों के लिए सेना का अवलंब लेकर चुनावी जीत का स्वाद चखा है। इस तरह, हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा

को नुक़्सान पहुंचाते हुए, सेना के घोड़े की सवारी करने का रुझान बढ़ेगा ही। इस ख़तरनाक रुझान के ख़िलाफ़ एकमात्र दीवार एक ऐसा सैन्य नेतृत्व है जो राष्ट्रीय रक्षा अकादमी के आदर्श वाक्य– "स्वयं से पहले सेवा" को बरक़रार रखे। सैन्य नेतृत्व पर यह बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है क्योंकि भारत एक परमाणु शक्ति है।

परमाणु अस्त्र

भारत की परमाणु नीति 2002 से बिना पुनरावृत्ति के जारी है। अपने मूल पूर्वपक्ष को बदलने के लिए इसने विवादों और दबावों का सामना किया है: पहले प्रयोग न करने की नीति; नागरिक नियंत्रण का रखरखाव; और कुछ निश्चित प्रतिक्रियाओं का अस्तित्व जो व्यापक हो सकती हैं। परमाणु शस्त्रागार अभी भी अपने परिकल्पित विकास चरण में है और इसके परिपक्व होने का संकेत तब दिया जाएगा जब चौथा एसएसबीएन क्रियाशील हो जाएगा। यह 2020 के दशक के मध्य तक होने की उम्मीद है। इसकी उत्तरजीविता और इसकी प्रभावी परिचालन कार्यपद्धति के संदर्भ में,कमान और नियंत्रण प्रणालियों में काफ़ी प्रगति हुई है। दिशाहीन लोगों द्वारा मिसाइल प्रक्षेपण के ख़िलाफ़ एक एबीएम प्रणाली विकसित की जा रही है और इसे इस दशक के आरंभ में तैनात किया जा सकता है। परमाणु संदर्भ में आवधिक समीक्षा की प्रणाली समायोजन की पहचान करती है और, अब तक, हमारी नीति में परिवर्तन करने की आवश्यकता महसूस नहीं की गई है।

वैश्विक स्तर पर पर्यावरण पर परमाणु विस्फोटों के विनाशकारी प्रभावों के बढ़ते वैज्ञानिक प्रमाणों ने बड़े पैमाने पर पहले हमला करने को एक आत्मघाती प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत किया है। यह प्रमाण परमाणु रणनीति के इस मूलभूत प्रश्न का उत्तर देने की असंभाव्यता में जुड़ता है–पहले हमले के बाद इसके फैलने को कैसे नियंत्रित किया जाए? भारत एक ग्लोबल नो फ़र्स्ट यूज़ संधि पर बल देने की विशिष्ट स्थिति में है, जो शांति और संकट के समय में स्थिरता बढ़ा सकती है।

अध्याय 5:
सूचना युग में रणनीति

अगले दशक में, प्रौद्योगिकी और साइबर स्पेस में तेज़ अंतरराष्ट्रीय होड़ के बीच वैश्विक सूचना राजनीति प्रमुखता से बढ़ेगी। इस अवधि में तीन प्रवृत्तियों के सबसे अहम रहने की संभावना है: दो या अधिक क्षेत्रों में साइबरस्पेस का विभाजन; निजी प्रौद्योगिकी प्लेटफ़ॉर्मों की राजनीतिक ताक़त; और व्यापक नेटवर्क वाले समाजों की राजनीति। इस संदर्भ में अपने हितों की रक्षा करने के लिए, और सूचना युग में एक अनुकूल स्थिति में होने के लिए भारत को देश के उद्देश्यों को हासिल करने के लिए साइबर क्षेत्र का उपयोग करने और विरोधियों को अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में इस तरह के उपयोग न कर पाने देने की क्षमता विकसित करनी होगी। अगले दस वर्ष में भारत को एक विश्वसनीय साइबर शक्ति बनना होगा।

यद्यपि हमारी सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) उद्योग विश्व में बहुत बड़ा स्थान रखती है, मगर भारत अभी तक एक बड़ी साइबर शक्ति नहीं बना है। सकल घरेलू उत्पाद में प्रौद्योगिकी क्षेत्र का योगदान 2020 के 7.7% से बढ़कर 2025 में 10% से अधिक होने का अनुमान है। कुछ आकलनों के अनुसार, दुनिया की डिजिटल प्रतिभा आधार का 75% हिस्सा भारत का है, जिसमें केवल शीर्ष चार भारतीय प्रौद्योगिकी कंपनियां दस लाख से अधिक लोगों को रोज़गार देती हैं। मगर यह मान लेना भ्रामक होगा कि यह अपने आप में भारत को एक साइबर शक्ति बनाता है। इसी तरह, बढ़ते नेटवर्क वाले सशस्त्र बल, ख़ुफ़िया और साइबर सुरक्षा संस्थाएं सामरिक अर्थों में साइबर शक्ति प्रदान नहीं करते हैं। साइबर शक्ति को अभी तक हमारी राष्ट्रीय रणनीति में एकीकृत नहीं किया गया है, जिसके कारण वित्तीय संसाधनों का सीमित आवंटन हुआ है और सूचना क्षेत्र को संभालने वाले सरकारी संगठनों के पास कम अधिकार रहते हैं।

ख़ुफ़िया जानकारी एकत्र करने और प्रचालन को प्रभावित करने के अलावा, भारत की विदेश नीति में साइबर शक्ति के उपयोग का कोई प्रदर्शन नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति अब ऐसी दुनिया में तर्कसम्मत नहीं है जहां भागीदार और विरोधी दोनों के पास साइबर शक्ति है और वे नियमित रूप से विभिन्न तरीक़ों से इसका उपयोग करते हैं। पिछले एक दशक में, शोधकर्ताओं ने भारत सरकार की कंप्यूटर प्रणाली की व्यवस्थित विदेशी निगरानी के साथ-साथ एक परमाणु ऊर्जा संयंत्र, एक अंतरिक्ष अन्वेषण मिशन और एक बड़े शहर को आपूर्ति करने वाले बिजली ग्रिड जैसे लक्ष्यों पर साइबर हमलों के साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं। भले ही ये बाहरी हमले अपने राजनीतिक लक्ष्यों को हासिल न कर पाए हों, मगर वे भारत की राष्ट्रीय रणनीति के लिए एक महत्वपूर्ण भेद्यता को रेखांकित करते हैं, जो कि अगले दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज का अधिकाधिक डिजिटलीकरण होने के कारण और गहन होगी।

भारत की साइबर रक्षा रणनीति को उन विशाल और बहुस्तरीय लक्ष्य-स्थान को सुरक्षित करना होगा जो यह अपने विरोधियों को प्रदान करता है।

प्रतिस्पर्धी प्रौद्योगिकी उद्योग, प्रशिक्षित मानवशक्ति का एक बड़ा निकाय, मोबाइल इंटरनेट की गहरी पैठ, और कई अनुसंधान एवं विकास और शैक्षणिक संस्थान भारत को एक विश्वसनीय साइबर शक्ति बनने की क्षमता प्रदान करते हैं। मगर एक वास्तविक शक्ति बनने के लिए, भारत को न केवल व्यवस्थित रूप से क्षमताओं में निवेश करना चाहिए, बल्कि उन्हें शासनतंत्र के रोज़गार योग्य साधनों में भी जोड़ना चाहिए। और अंततः विश्वसनीय बनने के लिए, सहयोगियों और विरोधियों को भारत की साइबर शक्ति का उपयोग करके राजनीतिक परिणाम प्राप्त करने की क्षमता को पहचानना चाहिए।

दृष्टिकोण

विभाजनकारी साइबरस्पेस

साइबरस्पेस का विभाजन 2000 के दशक के आरंभ में शुरू हुआ था जब चीन ने सामग्री सेंसरशिप की बाधा डाली और विदेशी इंटरनेट कंपनियों को देश में काम करने से रोक दिया। जो कभी चीन की स्व-पृथक्करण की नीति थी, वह अब साइबर स्पेस में साइनोस्फ़ीयर बनाने के एक वास्तविक प्रयास में बदल गई है, जिसमें कई देश शामिल हैं जो या तो चीन के साथ सीधे या पश्चिम के विरोध के कारण जुड़े हुए हैं। वैश्विक इंटरनेट से पूरी तरह कटे न होते हुए, चीन एक ऐसा क्षेत्र बना रहा है, जो मोटे तौर पर बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव के डिजिटल सिल्क रोड के समान है, जहां अक्सर इसके वित्तपोषण के सहयोग से इसकी बुनियादी संरचना, प्रौद्योगिकियों, मंचों और मानदंडों को तैनात किया जाता है। यह भूमिगत और जलगत फ़ाइबर-ऑप्टिक केबल प्रणाली के संदर्भ में जो दुनिया को जोड़ती है, उपग्रह-आधारित प्रणालियों के लिए, और वायर्ड और वायरलेस दूरसंचार नेटवर्क के मामले में सच है। चीन एक ऐसा क्षेत्र बना रहा है जहां वह निरंकुशता के लिए मंच प्रदान करके नेतृत्व का आनंद उठाएगा।

आने वाले वर्षों में पांचवीं पीढ़ी के मोबाइल दूरसंचार नेटवर्क (5जी) के आने से साइनोस्फ़ीयर की साइबर स्पेस क्षमताओं के दायरे में तेज़ी आने की संभावना है। ट्रम्प प्रशासन के उत्तरार्ध में, संयुक्त राज्य अमेरिका ने सूचना क्षेत्र में चीन की सामरिक चुनौती को पहचाना और इसका मुक़ाबला करने के लिए कई क़दम उठाए– इसमें चीनी नेटवर्क उपकरण, कर्मियों, सॉफ़्टवेयर और मोबाइल एप्लीकेशंस पर प्रतिबंध शामिल थे। अपने 5जी नेटवर्क में चीनी उपकरणों को स्वीकृति न देने के लिए इसने अपने फ़ाइव आईज़ सहयोगियों, जापान और यूरोपीय संघ के देशों पर दबाव डाला, जिससे चीनी राजनीतिक प्रतिशोध शुरू हो गया। चीन को रोकने के लिए यह तथाकथित "प्रौद्योगिकी युद्ध" वाशिंगटन के प्रकटतः द्विदलीय संकल्प में एक महत्वपूर्ण पहलू के रूप में उभरा है, जिसमें सेमीकंडक्टर, नेटवर्क इंफ़्रास्ट्रक्चर, ऑपरेटिंग सिस्टम, प्लेटफ़ॉर्म और सामग्री शामिल है।

भारत को साइनोस्फ़ीयर का हिस्सा नहीं बनना चाहिए। भारत के हित अनेक हितधारकों द्वारा शासित एक मुक्त और खुले साइबर स्पेस को बनाए रखने में निहित हैं। अपने स्वयं के सहयोगियों पर भी अत्यधिक निर्भर होने से बचने के लिए, भारत को अपने घरेलू बाज़ार के आकार, बड़े पैमाने पर

सामाजिक मंचों, डिजिटल सामग्री बनाने की क्षमता और डाटा निर्माण क्षमता का उपयोग करना होगा ताकि साइबर स्पेस के खुले स्वरूप को बढ़ावा दिया जा सके। शुरू में, सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि टेलीकॉम ऑपरेटरों, सरकारों, बैंकों और वित्तीय संस्थानों, बड़े कॉरपोरेट नेटवर्क और शोध एवं विकास संस्थानों के मुख्य नेटवर्क साइनोस्फ़ीयर से जुड़े उपकरणों और विक्रेताओं को हटा दें। उपभोक्ता उपकरणों जैसे कि मॉडेम, स्मार्टफ़ोन और अन्य साधनों को केवल सख़्त साइबर सुरक्षा ऑडिट के बाद ही अनुमति दी जानी चाहिए, जिसे श्वेतसूची वाले आपूर्तिकर्ताओं और आपूर्तिकर्ता-देशों के उपकरणों का उपयोग करके किया जाए। इसके अतिरिक्त, चीनी निवेशकों को सामरिक क्षेत्रों में (जैसे रक्षा, अनुसंधान एवं विकास, साइबर सुरक्षा); उन क्षेत्रों में जहां भारी मात्रा में डाटा एकत्र किया जाता है (जैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य, जीनोमिक्स, वित्तीय लेनदेन); और उन क्षेत्रों में जहां प्रणालीगत जोखिम हैं (जैसे बैंकिंग, टेलीकॉम, परिवहन और ऊर्जा संचरण) महत्वपूर्ण हिस्सेदारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

यूएस-चीन प्रौद्योगिकी युद्ध भारत की डिजिटल कूटनीति और इसके प्रौद्योगिकी उद्योग के लिए अवसर पैदा करेगा। वैश्विक डिजिटल मानदंडों की लड़ाई में, भारत का समावेशी डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर सामर्थ्य का स्रोत है। भारत का समावेशी और नवोन्मेषी डिजिटल अर्थव्यवस्था निर्माण का मॉडल अमेरिका, यूरोप और चीन से भिन्न विकल्प प्रदान करता है। साइनोस्फ़ीयर का हिस्सा न होने से भारतीय कंपनियों और मानवशक्ति के लिए अमेरिका, यूरोप और इंडो-पैसिफ़िक में सहयोगी देशों के साथ विश्वास की भावना के तहत काम करने के अवसर पैदा होंगे। विश्वासपूर्ण संबंध बनाना विदेश नीति का तो लक्ष्य है ही, मगर इसकी सफलता न्यायिक स्वतंत्रता को बनाए रखने, विदेशी फ़र्मों के साथ खुलेपन के और निष्पक्ष व्यवहार और देश और विदेश में भारतीय नागरिकों के आचरण पर निर्भर करेगी।

वैश्विक प्रौद्योगिकी के संदर्भ में “आत्मनिर्भरता” एक मिथक है। भारत का सामरिक लक्ष्य एक लचीली अंतरनिर्भरता बनाना होना चाहिए, जिसमें क्वाड और अन्य देशों के साथ ही चीन के साथ भी व्यापार और निवेश को बढ़ावा देना शामिल है। लचीली परस्पर निर्भरता के लिए भारत को सामान्य रूप से, और विशेष रूप से ऑस्ट्रेलिया, जापान और अन्य इंडो-पैसिफ़िक देशों के लिए एक बड़ा निर्यातक बनना होगा। यदि केंद्र और राज्य सरकारें बड़े विनिर्माण निवेश के लिए उपयुक्त माहौल बनाती हैं, तो भारत प्रौद्योगिकी पारिस्थितिकी तंत्र के एक महत्वपूर्ण हिस्से को आकर्षित कर सकेगा जो प्रौद्योगिकी युद्ध के कारण चीन से दूर हो गया है।

एआई और ऑटोमेशन के बावजूद, बहुत मुमकिन है कि कई प्रमुख कामों के लिए– उदाहरण के लिए सेमीकंडक्टर डिज़ाइन, साइबर सुरक्षा और इंफ्रास्ट्रक्चर के आश्वासन संबंधित– एक बड़े, कुशल और विश्वसनीय मानव संसाधन आधार की आवश्यकता हो। यदि वैश्विक आव्रजन प्रवाह और अधिक प्रतिबंधात्मक हो जाता है, तो ऐसे कार्य भारत में किए जा सकते हैं, बशर्ते राष्ट्र, राज्य और नगरपालिका की सार्वजनिक नीतियां ऐसे श्रमिकों और उनके परिवारों के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करें। भविष्य के वातावरण में सफल होने के लिए

पर्याप्त परिमाण और श्रेणी की मानव संसाधन क्षमता विकसित करने के लिए सार्वजनिक विश्वविद्यालयों में समग्र सुधार करना होगा, जहां विद्यार्थी उच्च स्तरीय प्रौद्योगिकी दक्षता के अलावा, सही निर्णय लेने और परंपराओं को चुनौती देने के लिए तैयार किए जाएं।

बिग टेक की शक्ति

दुनिया भर में मोबाइल इंटरनेट की पैठ और नेटवर्क प्रभावों के बल पर, कई प्रौद्योगिकी कंपनियों ने संप्रभु राज्यों और सरकारों के लिए कई तरह की चुनौतियां पेश करते हुए समाज, अर्थव्यवस्था, संस्कृति और राजनीति में वैश्विक प्रभुत्व हासिल कर लिया है। दुनिया भर के राज्यों ने अविश्वास, हेट स्पीच विरोधी, कर, डाटा गोपनीयता और स्थानीयकरण क़ानूनों जैसे मौजूदा साधनों का उपयोग करके फ़ेसबुक, अमेज़ॅन, ट्विटर, गूगल और एपल जैसे अंतरराष्ट्रीय प्रौद्योगिकी प्लेटफ़ॉर्मों पर अपनी शक्ति आज़माना शुरू कर दिया है। यद्यपि इससे बड़े प्रौद्योगिकी प्लेटफ़ॉर्मों की आर्थिक शक्ति को कम किया जा सकता है, मगर यह स्पष्ट नहीं है कि मौजूदा क़ानून उनकी राजनीतिक शक्ति का प्रबंधन करने के लिए पर्याप्त होंगे या नहीं। सूचना के प्रवाह, उपयोगकर्ताओं के डाटा और एल्गोरिद्म पर अपने नियंत्रण के माध्यम से लोगों के विश्वासों और व्यवहार को आकार देने की उनकी क्षमता से राजनीतिक शक्ति प्राप्त होती है। पिछले दशक ने ऐसे अनेक तरीक़े देखे हैं जिनसे सोशल मीडिया और प्रौद्योगिकी प्लेटफ़ॉर्मों का इस्तेमाल जनता की राय में हेरफेर करने, जनमत को आकार देने, राजनीतिक परिणामों को प्रभावित करने और जन आंदोलनों को आयोजित करने के लिए किया जा सकता है।

अमेरिकी सरकार की तीनों शाखाओं के बिग टेक फ़र्मों के प्रभाव को रोकने में शामिल होने की संभावना है, और यह देखा जाना शेष है कि बिग टेक के राजनीतिक प्रभाव को रोकने के लिए वे क्या उपाय करेंगे। बिग टेक की लीग में अपनी कुछेक कंपनियों के साथ, यूरोपीय संघ भी अपने नागरिकों के अधिकारों और हितों की रक्षा पर फ़ोकस कर सकता है, जैसा कि उसने डाटा गोपनीयता के मामले में किया था। अमेरिका के विपरीत, यूरोपीय संघ द्वारा हेट स्पीच के ख़िलाफ़ भी कंटेंट विनियमन लागू करने की संभावना है। चीन का एक पार्टी-राज्य– जो सख़्ती से अपनी प्रौद्योगिकी कंपनियों को दृढ़ नियंत्रण में रखता है– पसंद करेगा कि वे अन्य देशों में राजनीतिक प्रभाव प्राप्त करें। बीजिंग दृढ़ता से चीन के भीतर अपने प्रभुत्व की रक्षा करता है, और किसी व्यक्ति या फ़र्म को बहुत ज़्यादा प्रभावशाली नहीं बनने देता। रूस के साथ भी यही सच है, हालांकि कुछ कम हद तक। अन्य उदार लोकतंत्रों की तरह भारत के सामने भी अपने नागरिकों की मूलभूत स्वतंत्रताओं की रक्षा करते हुए, बिग टेक की राजनीतिक और आर्थिक शक्ति को प्रतिबंधित करने की चुनौती है।

भारत का हित इसी में है कि कोई भी व्यक्ति, औद्योगिक समूह या फ़र्म भारत या अन्य जगहों पर बाज़ार पर हावी न हो पाए जिसके द्वारा वह भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था, संस्कृति और राजनीति पर अपना अधिकार जमा ले। चीन के प्रौद्योगिकी प्लेटफ़ॉर्मों के साथ, जिन्हें चीन राज्य से जुड़ा हुआ माना जाना चाहिए, सामरिक और सुरक्षा आयाम और भी अधिक विकट हैं। नीतिगत चुनौती प्रौद्योगिकी प्लेटफ़ॉर्मों द्वारा प्रदान की जाने वाली अत्यावश्यक

आर्थिक और रोज़गार वृद्धि को नुक़सान पहुंचाए बिना उनकी शक्ति पर अंकुश लगाना होगी। कोई संजीवनी बूटी तलाश करने के बजाय, इस परिणाम को हासिल करने के लिए सभी मौजूदा नीतिगत साधनों का उपयोग करना होगा। इनमें– सरकारी ख़रीद में ओपन-सोर्स प्रणाली के विशेषाधिकार के साथ ही – कर और डाटा स्थानीयकरण की आवश्यकता से बेहतर नीति प्रतिस्पर्धा और डाटा गोपनीयता क़ानून रहेंगे। भारत को 5जी नेटवर्क में उपयोग किए जाने वाले उपकरणों सहित नेटवर्क उपकरणों में खुले मानकों के उपयोग का समर्थन करना चाहिए। यह घरेलू प्रौद्योगिकी और सामाजिक प्लेटफ़ॉर्मों को विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनने और भारत से बाहर विस्तार करने देने का भी अच्छा तरीक़ा होगा।

सामाजिक पूंजी और भारत की नीति

नेटवर्क से जुड़े समाजों ने न केवल काल्पनिक समुदाय और सामूहिक पहचान निर्मित की हैं बल्कि मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं और वैयक्तिक निर्णय लेने की क्षमता को भी प्रभावित किया है। पिछले दशक में हमने ऑनलाइन आत्म-कट्टरपंथ, नेतृत्वहीन जन-लामबंदी, व्यवस्थित ढंग से ट्रोलिंग, "फ़र्ज़ी समाचारों" का उपयोग, दिखावटी हिंसा और बड़े पैमाने पर मतदाताओं को मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रभावित करना देखा है। समाज भले ही अभी इन चुनौतियों का जवाब देने के लिए जूझ रहे हों, मगर ऐसी नई तकनीकें पहले से ही मौजूद हैं जो विश्वसनीय नक़ली चित्र, वीडियो और दस्तावेज़ गढ़ सकती हैं; और कंपनियों और सरकारों के पास ऐसा पर्याप्त डाटा है जिसका उपयोग नेटवर्क से जुड़े समाजों की राजनीति का फ़ायदा उठाने के लिए किया जा सकता है। ख़ासतौर से खुले, उदार लोकतांत्रिक समाज आंतरिक और बाहरी ताक़तों के द्वेष और छल-कपट की चपेट में आने के लिए संवेदनशील होते हैं।

शत्रुतापूर्ण सूचना अभियानों के ख़िलाफ़ बुनियादी बचाव प्रचुर सामाजिक पूंजी और एक स्वतंत्र, स्वस्थ, विविध मीडिया वातावरण है। जिस हद तक भारतीय समाज ध्रुवीकरण और पहचान की राजनीति में लिप्त है, उससे यह बाहरी विरोधियों के सूचना संचालन के प्रति संवेदनशील होगा। हमारे सूचना युग में राजनीतिक और सामाजिक दोषों में सुधार लाना, अनेक मौजूदा टूट-फूटों को दुरुस्त करना और पहचान-संशयवादी सामाजिक विश्वास का निर्माण करना राष्ट्रीय रक्षा का आधार है। साथ ही, क़ानून-प्रवर्तन प्राधिकरणों को सार्वजनिक व्यवस्था के लिए ख़तरों को समझने और उनका जवाब देने के लिए संवैधानिक रूप से मज़बूत विधायी उपकरणों से लैस, प्रशिक्षित और समर्थित होना चाहिए।

सिद्धांत रूप में, हमारी बहुलवादी संस्कृति, जीवंत विषय और मीडिया उद्योग, और मुक्त मीडिया को भारत को साइबर स्पेस में कम से कम आनुपातिक छाप का आनंद लेने देना चाहिए। हालांकि ऐसा होने के लिए, हमारी सांस्कृतिक ऊर्जाओं के एक बड़े हिस्से को बाहर की ओर निर्देशित करना होगा। ऐसी परियोजना में राज्य की भूमिका बस सीमित या अप्रत्यक्ष ही हो सकती है। प्रेरणा और आर्थिक प्रलोभन कुछ फ़र्मों और संगठनों को विदेशों में रिपोर्टिंग करने और रुझान बनाने पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं, लेकिन लंबी अवधि में इस लक्ष्य के लिए आर्थिक नीति का एक समग्र बाहरी अभिविन्यास अधिक प्रभावी होगा।

साइबर आयोग

सामरिक उद्देश्यों के लिए साइबर क्षेत्र में राष्ट्रीय क्षमताओं का समन्वय, विकास और संरेखण करने के लिए, केंद्र सरकार को परमाणु ऊर्जा और अंतरिक्ष आयोगों की तर्ज पर एक साइबर आयोग की स्थापना करनी चाहिए। साइबर आयोग को क्षमता, लचीलापन, रक्षा और हथियारों के निर्माण का काम सौंपा जाना चाहिए। शस्त्रीकरण अनिवार्य है। आयोग को इस दशक की पहली तिमाही के भीतर साइबर जासूसी, गिरावट और क्षति, और साथ ही प्रभाव के लिए स्वदेशी साधन विकसित करने का अधिकार होना चाहिए। इसे एक साइबर शक्ति नीति की भी सिफारिश करनी चाहिए जो भारत के समग्र सामरिक सिद्धांत से मेल खाती हो। यह आयोग एक नेटवर्क से जुड़े संगठन के रूप में सर्वोत्तम रूप से गठित होगा जो सरकार, निजी क्षेत्र, शैक्षिक समुदाय और आम जनता के बीच से प्रतिभा और विशेषज्ञता को आकर्षित करने में सक्षम हो।

क्षमता

साइबर शक्ति का पहला स्तंभ बुनियादी प्रौद्योगिकियों, आपूर्ति श्रृंखलाओं और उद्योगों पर अधिकार है जो सूचना अर्थव्यवस्था को मज़बूत करते हैं। चूंकि ये प्रौद्योगिकियां समय के साथ बदल जाती हैं, इसलिए यह संभव है कि नई साइबर शक्तियां अगली प्रौद्योगिकी पीढ़ी के साये में सामने आएं। हालांकि एक दशक बाद के विजेताओं की भविष्यवाणी करना नामुमकिन है, मगर यह स्पष्ट है कि कुछ बुनियादी प्रौद्योगिकीय क्षेत्रों में नेतृत्व एक महत्वाकांक्षी साइबर शक्ति के लिए अहम होगाः डीप कंप्यूटिंग (क्वांटम कंप्यूटिंग समेत), संज्ञानात्मक विज्ञान और जीनोमिक्स। भारत को इन क्षेत्रों में शोध एवं अनुसंधान के लिए स्थायी सार्वजनिक निवेश की ज़रूरत है, जो हमारे शोध संस्थानों को सुदृढ़ करने की दिशा में योगदान देगा, दुनिया के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों को आकर्षित करने, और उच्च शैक्षिक संस्थानों का प्रभावी पाठ्यक्रम बनाने में मदद करेगा।

मानव संसाधन

भारत की शिक्षा प्रणाली– सरकारी और प्राइवेट दोनों– में वैश्विक मांग की आपूर्ति करने का माद्दा है, और, भले ही 'पारंपरिक' आईटी नौकरियां अप्रचलित हो जाएं, इसमें उभरती हुई अर्थव्यवस्था के लिए पर्याप्त संख्या में कुशल प्रौद्योगिकी कामगारों को बनाने की संभावना है। जैसा कि पहले भी कहा गया है, स्नातकों को ऐसी दुनिया के लिए व्यापक ज्ञान और संज्ञानात्मक कौशल हासिल करने की आवश्यकता होगी जहां मशीनें नियमित कार्यों को पूरा करेंगी और मनुष्य निर्णय लेंगे। सूचना प्रचालन अनिवार्य रूप से सहयोगियों और विरोधियों के मन में वांछित संज्ञानात्मक प्रभाव पैदा करने से जुड़े हैं। इसलिए पाठ्यक्रम को न केवल प्रौद्योगिकी के मेल पर, बल्कि अनुभूति पर भी ध्यान देना होगा। हालांकि यह विरोधाभासी लग सकता है, मगर नागरिकों को सूचना युग में विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी होने के लिए तैयार करने के लिए भारत के स्कूलों और विश्वविद्यालयों को मानविकी और सामाजिक विज्ञान को शामिल करना होगा। राज्य सरकार भले ही सरकारी विश्वविद्यालयों को बेहतर बनाएं, मगर उन्हें उत्कृष्ट लिबरल आर्ट्स विश्वविद्यालयों में निजी निवेश और विकास को प्रोत्साहित करना होगा।

लचीलापन

लचीलापन अनिवार्यत: नुक़्सान और गिरावट की परिस्थितियों में भी व्यापार और जीवन को सुचारू रखने की क्षमता है। भारत को अधिक लचीले वैश्विक और घरेलू नेटवर्क बनाने के लिए अपने दूरसंचार ऑपरेटरों और फ़र्मों को प्रोत्साहन देना होगा। अतिरिक्त घरेलू और अंतरराष्ट्रीय नेटवर्कों को प्रोत्साहन देने, अनेक घरेलू हब बनाने और विश्व के दूरसंचार केंद्रों से जुड़ने के लिए दूरसंचार नीतियों की पुनः समीक्षा करनी होगी। भारत को सुनिश्चित करना होगा कि इसके दूरसंचार ऑपरेटरों के पास नई अंतरराष्ट्रीय समुद्री केबल प्रणालियों पर पर्याप्त क्षमता हो। उपग्रह संचार के संदर्भ में, व्यावसायिक अंतरिक्ष अभियानों का उदारीकरण करने के मई 2020 के निर्णय को मज़बूत विनियामक रूपरेखा के साथ सुदृढ़ करना होगा जो अंतरिक्ष के सभी क्षेत्रों में निजी निवेश को प्रोत्साहित करे।

साइबर प्रचालन और युद्ध

साइबर 'युद्ध'– जिसमें राज्य और ग़ैर-राज्यीय प्रतिद्वंद्वी हों– एक लगातार जारी घटना है। मगर, अपने आप में साइबर प्रचालनों के पास किसी निर्णयात्मक राजनीतिक परिणाम की ओर धकेलने, उसके लिए विवश करने या आकार देने की सीमित शक्ति होती है। उनकी उपयोगिता संयोजन के रूप में प्रयुक्त की जाने वाली शक्ति के अन्य रूपों की प्रभावशीलता को बदलने की उनकी क्षमता में निहित है। प्रभाव संचालन और सार्वजनिक कूटनीति लक्षित देशों में सार्वजनिक रुझानों को इस तरह से आकार दे सकती हैं जो राजनीतिक पहलों को सक्षम बनाएं। साइबर जासूसी और डिग्रेडेशन ऑपरेशन भौतिक लड़ाई शुरू होने से बहुत पहले ही विरोधियों की सैन्य और परिचालन क्षमताओं को कमज़ोर कर देते हैं। विश्व की प्रमुख शक्तियों की तरह, भारत को अपने राजनयिक, विदेशी इंटेलीजेंस और सैन्य संरचनाओं में साइबर परिचालन क्षमताओं को एकीकृत करना जारी रखना होगा। साइबर आयोग को रक्षात्मक और आक्रामक दोनों संदर्भों में साइबर हथियारों के विकास और संचालन की निगरानी करनी होगी। आने वाले दशक में भारत के एक विश्वसनीय साइबर शक्ति के रूप में उभरने के लिए यह आवश्यक है।

अध्याय 6:
पारिस्थितिक संकट

21वीं सदी के बाद मानव जाति का अस्तित्व शायद हमारे सामने मौजूद पारिस्थितिक संकट को स्वीकार करने और इससे निपटने के लिए तत्काल सहयोगपूर्ण कार्रवाई करने पर निर्भर हो। हाल ही में जारी छठी आईपीसीसी रिपोर्ट ने न केवल जलवायु परिवर्तन संकट के पैमाने को बल्कि उस तात्कालिकता को भी रेखांकित किया है जिसके साथ इसे समाधान करने की ज़रूरत है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जहां भारत के विकास की संभावनाएं न केवल भारत के अपने विकल्पों से, बल्कि वैश्विक संदर्भ में जो कुछ होगा, उससे भी बहुत अधिक प्रभावित होंगी। भारत को अपने संसाधनों की सीमाओं के भीतर, अपनी क्षतिग्रस्त पारिस्थितिकी और ख़राब प्राकृतिक संपदाओं के सुधार के लिए वह सब कुछ करना होगा जो वह कर सकता है। साथ ही, इसे हमारे ग्रह की नाज़ुक पारिस्थितिकी को बचाने और सुरक्षित रखने के लिए अन्य देशों के साथ मिलकर काम करना होगा ताकि एक त्वरित, महत्वाकांक्षी और प्रभावी वैश्विक प्रतिक्रिया जुटाई जा सके। जलवायु परिवर्तन इस युगांतरकारी संकट का केवल एक आयाम है। इस लिहाज़ से, मौजूदा दशक एक निर्णायक दशक होगा।

पारिस्थितिक स्थिरता देश की विकास रणनीति और प्रक्रियाओं में अंतर्निहित होनी चाहिए। आर्थिक विकास और पारिस्थितिक संरक्षण के बीच समझौते की धारणा अनुचित है। अब हम एक ऐसी स्थिति में हैं जहां सतत विकास के लिए पारिस्थितिकी की सुरक्षा एक पूर्व शर्त बन गई है। विकास के पारिस्थितिक पक्ष की अनदेखी करना, वास्तव में एक गतिरोध की ओर ले जाएगा। कोविड-9 महामारी ने उन ख़तरनाक नतीजों के बारे में जागरूकता बढ़ा दी है जो जैव विविधता के नुक़्सान और जंगली प्रजातियों के पहले से ही सिकुड़ते आवास के क्षरण के परिणामस्वरूप होते हैं। लॉकडाउन ने जहां एक ओर भारी संकट पैदा किया, वहीं दूसरी ओर इसने कम वायु प्रदूषण, स्वच्छ नदियों और शहरी इलाक़ों में पक्षियों और पशुओं की कई प्रजातियों की वापसी के लिए जागरूकता और समझ को भी बढ़ावा दिया है। अब भारत और दुनिया भर में प्रचलित ऐसे विकास प्रचलनों पर नए सिरे से सोच-विचार करने के बारे में एक बड़ी स्वीकार्यता हो सकती है जो प्राकृतिक संसाधनों के ऐसे निरंतर क्षरण पर निर्भर हैं जो पुनर्जीवित होने और दोबारा उग आने की उनकी क्षमता से परे है। प्रकृति के प्रति श्रद्धा भारतीय संस्कृति में गहराई से निहित है और यही श्रद्धा पारिस्थितिक स्थिरता के समर्थन में लोकप्रिय लामबंदी को सक्षम कर सकती है। इससे भारत को पारिस्थितिक संकट से निपटने में अंतरराष्ट्रीय विमर्श को आकार देने में भी मदद मिलेगी। वर्तमान सरकार स्वच्छ भारत अभियान जैसे लोकप्रिय अभियान आरंभ

करने में सफल रही है। इसी को विस्तार देकर इसे सृष्टि रक्षा अभियान बनाया जा सकता है।

भारत पहले से ही संयुक्त राष्ट्र संधारणीय विकास लक्ष्यों (एसडीजी) के लिए प्रतिबद्ध है जिन्हें 2030 तक हासिल किया जाना है। उन फ़ीडबैक लूपों का संज्ञान लेते हुए जो विभिन्न क्षेत्रों को एक साथ बांधते हैं, एसडीजी अपने बहु-क्षेत्र चरित्र के लिए उल्लेखनीय हैं। उदाहरण के लिए, खाद्य सुरक्षा के दृष्टिकोण से रासायनिक उर्वरकों और विषैले कीटनाशकों के उपयोग को आवश्यक समझा जा सकता है, लेकिन स्वास्थ्य सुरक्षा पर उनका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि किसान और उनके परिवार इस तरह की विषाक्तता के संपर्क में आ जाते हैं। कोयले से चलने वाले ताप विद्युत संयंत्रों की स्थापना को ऊर्जा सुरक्षा के दृष्टिकोण से उचित ठहराया जा सकता है, लेकिन वे बड़ी मात्रा में पानी का उपयोग करते हैं, ज़हरीला धुआं छोड़ते हैं, और ज़हरीले अपशिष्ट उत्पन्न करते हैं - और इन सभी का पानी और स्वास्थ्य सुरक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत, कुछ पहलों का सभी क्षेत्रों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। मसलन, नए वनों को लगाने से न केवल कार्बन सिंक बनता है, बल्कि यह बारिश के पानी के बहने को रोककर और भूमिगत जलभृतों के पुनर्भरण को संभव बनाकर जल सुरक्षा को भी बढ़ाता है।

इस युग की एक और विनाशकारी चीज़ है प्लास्टिक का कचरा। यह हमारी नदियों को अवरुद्ध कर रहा है, हमारी मिट्टी को दूषित कर रहा है, और बड़े-बड़े समुद्री स्थानों को ऐसे मृत क्षेत्रों में बदल रहा है जिनमें जीवन की कोई संभावना नहीं है। माइक्रो-प्लास्टिक को मछलियों द्वारा निगल लिया जाता है और यह खाद्य श्रृंखला में भी अपना रास्ता खोज लेता है और मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। प्लास्टिक के कचरे को हटाने और इसके पुनर्चक्रण में निवेश करने, इसके उपयोग को प्रतिबंधित करने और इसके जैविक विकल्पों को प्रोत्साहित करने से कई ऐसे क्षेत्रों में लाभ होगा जिन पर हमारी वर्तमान लेखा प्रणालियों द्वारा अभी तक क़ब्ज़ा नहीं किया गया है। एसडीजी को एक पूरक पहल मानने के बजाय हमें उन्हें भारत की विकास रणनीति का भाग बना लेना होगा, और जहां भी संभव हो, वहां सह-लाभ दृष्टिकोण पर बल देना होगा। यहां भारत के पास विकास का एक अनुकरणीय सतत दृष्टिकोण तैयार करने का अवसर है।

जलवायु परिवर्तन पारिस्थितिक चुनौती का एक पक्ष है और इससे उस बड़े ढांचे में ही निपटा जाना चाहिए। जलवायु परिवर्तन का समाधान निकालने में भारत की भागीदारी बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत उन देशों में से एक है जिन्हें इसके प्रतिकूल परिणामों से सबसे अधिक ख़तरा है। ख़तरे की व्यापकता जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ़्रेमवर्क कन्वेंशन (यूएनएफ़सीसीसी) की रिपोर्ट और जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल (आईपीसीसी) की रिपोर्टों में दिखाई पड़ती है। भारतीय पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के भारतीय क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के आकलन (जून 2020) ने इस तथ्य पर और भी बल दिया है कि जलवायु का जोखिम विकास के पूरे क्षेत्र को प्रभावित करता है: कृषि उत्पादकता का कम होना, जल अपर्याप्तता का बढ़ना, रोगवाहक कीट और जलजनित रोगों का फैलाना, और बार-बार आने वाली प्राकृतिक आपदाओं के कारण कहीं अधिक और संचयी विनाश से देश का प्रभावित होना। विकास के नाम पर भारत की पारिस्थितिकी को और अधिक

नुक़्सान पहुंचाना और इसकी प्राकृतिक संपदा का ह्रास करना एक ग़लत विकल्प है। प्राकृतिक संसाधनों में अस्थायी कमी के परिणामस्वरूप आय और धन में किसी भी प्रकार की वृद्धि जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभाव से नष्ट हो जाएगी। साथ ही, अगर हम वर्तमान पथ पर ही चलते रहे, तो भविष्य में किसी भी विकास की संभावना कम हो जाएगी।

भारत के लिए जलवायु परिवर्तन की चुनौती दोगुनी है। पहली, चूंकि जलवायु परिवर्तन एक वैश्विक परिघटना है, इसलिए भारत का भाग्य सहयोगपूर्ण ढंग से समस्या के साथ निपटने में वैश्विक सफलता या विफलता से जुड़ा है। वैश्विक जलवायु परिवर्तन व्यवस्था बनाने में भारत की भागीदारी बहुत बड़ी है - एक ऐसी व्यवस्था जो ग्लोबल वार्मिंग के नकारात्मक प्रभाव को रोकने में मदद कर सके, और फिर भी इसके विकास की संभावनाओं को सीमित न करे। इसलिए, भारत को जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौते की अनुवर्ती कार्रवाई के रूप में जलवायु परिवर्तन पर चल रही बहुपक्षीय वार्ताओं में एक सक्रिय और अग्रणी भागीदार होना चाहिए।

दूसरी है घरेलू आयाम। भारत में ग्रीनहाउस गैसों का संचयी या ऐतिहासिक उत्सर्जन, जिनमें कार्बन उत्सर्जन सबसे महत्वपूर्ण है, अपेक्षाकृत कम है और इसका वर्तमान प्रति व्यक्ति उत्सर्जन दुनिया में न्यूनतम में से एक है। भारत की कुल आबादी दुनिया की 18 प्रतिशत है, लेकिन वैश्विक उत्सर्जन का केवल 7 प्रतिशत ही है। 2018 में, दुनिया भर में कुल कार्बन उत्सर्जन 36.5 बिलियन टन सीओ2 था - जिसमें चीन का 10 बिलियन, अमेरिका का 5.4 बिलियन और भारत का 2.6 बिलियन था। भले ही भारत तीसरा सबसे बड़ा उत्सर्जक रहा हो, मगर यह चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका से काफ़ी नीचे है। इन तथ्यों को भारत के अंतर्राष्ट्रीय विमर्श में प्रमुखता से और बार-बार उजागर करने की आवश्यकता है - विशेषकर ऐसे आरोपों का जवाब देने के लिए कि अगले दशक और उसके बाद भारत की ऊर्जा का प्रक्षेप पथ पेरिस के लक्ष्यों को पूरा करने में सबसे बड़ी बाधा है। जलवायु परिवर्तन के विमर्शों में एक और प्रवृत्ति भारत और चीन को एक साथ रखने की है। लेकिन हमारे विकास पथ अब काफ़ी भिन्न हैं। भारत को चीन से ख़ुद को पूरी तरह अलग करने और अपनी असाधारण स्थिति को उजागर करने की ज़रूरत है।

अगले दशक में, भारत में कोयले का उपयोग सुर्ख़ियों में रहेगा। माना जा रहा है कि कोयला-आधारित ताप विद्युत की भारत अपनी वर्तमान 200 गीगावाट क्षमता में, 2030 तक 100 गीगावाट क्षमता और जोड़ने की योजना बना रहा है। भारतीय कोयला खदानें अभी 700 मिलियन टन कोयले का उत्पादन करती हैं - यह आंकड़ा 2030 में 1 बिलियन टन तक बढ़ जाएगा। इन आधारों पर, 2050 तक वैश्विक तापमान में औसत वृद्धि को 2 डिग्री सेंटीग्रेड के भीतर रखने के वैश्विक प्रयासों के लिए भारत को प्रमुख ख़तरे के रूप में पेश किया जा रहा है। हम इस बात को सामने लाने में नाकाम रहे हैं कि वर्तमान समय में चीन की कोयला-आधारित ताप विद्युत स्थापित क्षमता 1100 गीगावाट से अधिक है और इसके अलावा 250 गीगावाट (भारत की कुल वर्तमान क्षमता से अधिक) प्रक्रियाधीन है। इसका कोयला उत्पादन और आयात बढ़ रहा है। 2005 में उत्पादन 2.2 अरब टन था; 2015 में 3.5 बिलियन टन और 204 मिलियन टन आयात; और 2018 में

3.5 बिलियन टन व 295 मिलियन टन आयात। भारत को इन तथ्यों को उजागर करने की ज़रूरत है। यहां तक कि अगर निकट भविष्य में चीन की कोयला आधारित बिजली में गिरावट आ जाए, तो भी इसका मतलब यह नहीं है कि भारत भी अपने उत्पादन में काफ़ी गिरावट करे, जिससे इसके लोगों की ऊर्जा ग़रीबी और बढ़ जाए। यह कहना पूरी तरह ग़लत है कि जिन लोगों के पास बड़ी जीवाश्म ईंधन क्षमता है वे अपने पास जो कुछ भी रखते हैं उसे रख सकते हैं जबकि बहुत कम सीमा वाले अन्यों को आगे विस्तार करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इससे वैश्विक विकास अंतर स्थिर होने के साथ ही साथ जलवायु न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन भी होगा।

कोयला क्षेत्र में भारत की स्थिति काफ़ी अच्छी है। उम्मीद से कम बिजली की मांग की बदौलत, भारतीय केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण ने कहा है कि वर्तमान दशक में 100 गीगावाट की अतिरिक्त क्षमता के लक्ष्य का केवल आधा ही पूरा किया जा सकता है। इसके अलावा, अक्षय ऊर्जा की क़ीमत अब कोयला आधारित ताप विद्युत की तुलना में कम है, जिससे कोयला आधारित ताप विद्युत की आर्थिक व्यवहार्यता कम हो रही है। भारत एकमात्र विकासशील देश है जो कोयले पर एक बड़ा उपकर लगाता है - वर्तमान में 400 रुपये प्रति टन - जोकि प्रभावी रूप से कार्बन कर है। लेकिन अनुचित अंतरराष्ट्रीय दबाव का विरोध करने को उस प्रमुख घरेलू प्रयास को धीमा करने का बहाना नहीं बनाना चाहिए जो भारत को अपने विकास पथ को पारिस्थितिक रूप से अधिक टिकाऊ राह पर लाने के लिए करते रहना होगा। वह प्रयास ख़ुद अपने दम पर खड़ा है।

भारत के सतत विकास में कम कार्बन प्रक्षेपवक्र के प्रति प्रतिबद्धता शामिल है। ऊर्जा सुरक्षा के लिए और पारिस्थितिक चुनौतियों का सामना करने के लिए, भारत को कार्बन आधारित जीवाश्म ईंधन पर अपनी वर्तमान निर्भरता से सौर ऊर्जा जैसे अक्षय और स्वच्छ स्रोतों पर प्रगतिशील निर्भरता की ओर रणनीतिक बदलाव करना चाहिए। आज भारत की तेल आवश्यकताओं का 90% दुनिया के उन भागों से आयात किया जाता है जहां राजनीतिक अशांति और आपूर्ति में व्यवधान निरंतर जोखिम हैं। प्राकृतिक गैस और कोयले का हमारा आयात बढ़ता जा रहा है। नए बिजली संयंत्र कम राख वाले उच्च गुणवत्ता वाले कोयले का उपयोग करते हैं, जोकि भारत में उपलब्ध नहीं है। ऊर्जा सुरक्षा, विशेष रूप से आत्मनिर्भर भारत के संदर्भ में, अक्षय ऊर्जा की ओर तत्काल बदलाव, ऊर्जा दक्षता पर अधिक ध्यान देने, और भी कुशल अक्षय ऊर्जा उत्पादन पर सहयोगपूर्ण अनुसंधान और विकास को प्रोत्साहित करने, किफ़ायती और कुशल ऊर्जा भंडारण, और संलयन ऊर्जा सहित सुरक्षित और अधिक सस्ती परमाणु ऊर्जा की आवश्यकता है। भारत पहले से ही अंतर्राष्ट्रीय थर्मोन्यूक्लियर एनर्जी रिसर्च (आईटीईआर) परियोजना में एक प्रमुख भागीदार है। ये उपाय न केवल ऊर्जा सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए बल्कि व्यापक परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी महत्वपूर्ण हैं।

जलवायु परिवर्तन के सैन्य सुरक्षा पर प्रत्यक्ष प्रभाव पर ग़ौर करें। भारतीय सैनिकों को उत्तर में ऊंचे पहाड़ी क्षेत्र में तैनात किया जाता है। कुछ तैनातियां ऐसे स्थानों पर होती हैं जहां निरंतर रूप से पाला रहता है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण ग्लेशियरों का पिघलना हमारे रक्षा बलों के लिए एक बड़ा ख़तरा

होगा। हिमस्खलन और भूस्खलन से पहले ही काफ़ी जानें जा चुकी हैं। इसी तरह, समुद्र के स्तर में वृद्धि और निचले तटीय मैदानों में बाढ़ से हमारे नौसैनिक प्रतिष्ठानों और ठिकानों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। आने वाले दशक में हमारे राष्ट्रीय सुरक्षा प्रतिष्ठान का ध्यान ख़ास तौर से ऐसी चुनौतियों को स्वीकार करने, उनका आकलन करने और उन पर कार्रवाई करने पर होना चाहिए।

भारत ने पेरिस समझौते की प्रतिबद्धताओं के भाग के रूप में अक्षय ऊर्जा के लिए महत्वाकांक्षी लक्ष्य भी निर्धारित किए हैं। 2022 तक 175 गीगावाट अक्षय ऊर्जा के मूल लक्ष्य को पूरा कर लिया जाएगा। अब इसे संशोधित करके 2030 तक 227 गीगावाट और 450 गीगावाट कर दिया गया है। 2030 तक बिजली की मांग का लगभग 40% शायद अक्षय ऊर्जा से पूरा किया जाए। कोयला आधारित बिजली वर्तमान बिजली उत्पादन के 76% से घटकर 2040 तक शायद केवल 46% रह जाए। इसे भी जलवायु परिवर्तन पर वैश्विक कार्रवाई में एक प्रमुख योगदान के रूप में पेश किया जाना चाहिए।

आने वाले दशक में, ऊर्जा दक्षता को बढ़ाने और ऊर्जा संरक्षण को बढ़ावा देने को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भारत के पास दो महत्वपूर्ण क़ानूनी साधन हैं। पहला है ऊर्जा संरक्षण अधिनियम (ईसीए), जिसने 15 ऊर्जा-गहन उद्योग निर्दिष्ट किए हैं, जिन्हें अधिनियम के तहत स्थापित ऊर्जा दक्षता ब्यूरो (बीईई) द्वारा बनाए गए मानकों के अनुसार ऊर्जा संरक्षण उपायों को अपनाना चाहिए। यह क़ानून अल्यूमीनियम, उर्वरक, लौह व इस्पात, सीमेंट, लुगदी और काग़ज़, क्लोर क्षार, चीनी, कपड़ा, रसायन, रेलवे, बंदरगाह, पेट्रोकेमिकल्स, पेट्रोलियम रिफ़ाइनरियों, थर्मल और हाइडल पावर स्टेशन, बिजली प्रेषण और वितरण कंपनियां, और वाणिज्यिक भवनों या प्रतिष्ठानों सहित कई उद्यमों के लिए ऊर्जा ऑडिट को भी अनिवार्य करता है।

ब्यूरो ऑफ़ एनर्जी एफ़िशियंसी ने एक 'परफ़ॉर्म एंड ट्रेड' बाजार तंत्र की शुरुआत भी की है, जिसके माध्यम से अधिनियम के अंतर्गत कवर किए गए उद्यमों द्वारा ऊर्जा प्रमाणपत्रों का लेनदेन किया जा सकता है। जो लोग मानक से बेहतर प्रदर्शन करते हैं, वे कैलोरीफ़िक इकाइयों में निर्दिष्ट ऊर्जा प्रमाणपत्र प्राप्त करते हैं। फिर इन्हें दंड से बचने के लिए कम प्रदर्शन करने वाले उद्यमों द्वारा ख़रीदा जा सकता है। अगर सख़्ती से लागू किया जाए और एक सशक्त बीईई द्वारा इसकी निगरानी की जाए, तो ईसीए ऊर्जा संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए एक प्रभावी साधन बन सकता है। आने वाले दशक के दौरान, ईसीए को लागू करना प्राथमिकता होनी चाहिए।

ईसीए से संबंधित एनर्जी कंज़र्वेशन बिल्डिंग कोड (ईसीबीसी) है जिसे 2007 में लागू किया गया था। यह कोड विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत का शहरीकरण अभी भी अपने प्रारंभिक चरणों में है। अधिकांश भवन निर्माण, आवासीय और वाणिज्यिक दोनों, आने वाले वर्षों में होंगे। इन भवनों के ऊर्जा कुशल होने को सुनिश्चित करना ऊर्जा सुरक्षा को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करेगा। बीईई, जो कोड को लागू करने का प्राधिकरण भी है, ने 2017 में भवनों में ऊर्जा संरक्षण के लिए उच्च मानकों को स्थापित करने वाला एक संशोधित कोड जारी किया है। ईसीए की ही तरह, इसके लिए भी चुनौती सख़्त कार्यान्वयन है। ईसीए और ईसीबीसी को जलवायु

परिवर्तन की चुनौती का सामना करने में महत्वपूर्ण सह-लाभ के साथ भारत की ऊर्जा सुरक्षा बढ़ाने के लिए स्तंभ बनना चाहिए।

ऊर्जा संरक्षण और जलवायु परिवर्तन के लक्ष्यों को पूरा करने में निजी और सार्वजनिक दोनों ही कॉरपोरेट क्षेत्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे। कॉरपोरेट क्षेत्र तेज़ी से जागरूक होता जा रहा है कि जलवायु परिवर्तन एक गंभीर व्यावसायिक जोखिम है और कि इससे निपटना सिर्फ़ राज्य की ज़िम्मेदारी नहीं है। किसी भी सतत विकास रणनीति के लिए उपरोक्त लक्ष्यों में कॉरपोरेट क्षेत्र को योगदान करने के लिए जुटाना अनिवार्य होगा।

हमने इस पर पहले भी बात की है कि भारतीय उपमहाद्वीप एक भू-राजनीतिक और भू-आर्थिक इकाई है और कि क्षेत्र के आर्थिक एकीकरण के लिए काम करना भारत के हित में है। लेकिन उपमहाद्वीप एक एकल पारिस्थितिक इकाई भी है और इसके सामने पारिस्थितिक और जलवायु परिवर्तन की चुनौतियां हैं जिनका सामना क्षेत्र के देशों के बीच सहयोग के बिना नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, हिमालय के ग्लेशियरों के पिघलने या पहाड़ों की नाज़ुक पारिस्थितिकी के क्षरण से न केवल भारत, बल्कि पाकिस्तान, नेपाल और भूटान भी प्रभावित होंगे। चूंकि उपमहाद्वीप के उत्तरी मैदानों के नदी समूहों का उद्गम हिमालय में है, इसलिए अगर इन नदी समूहों में बाढ़ें आएं और फिर कम प्रवाह रहे, तो बांग्लादेश भी गंभीर रूप से प्रभावित होगा। इसके अलावा, उपमहाद्वीप के सभी देश मानसून से प्रभावित होते हैं और मौसम के स्वरूप में कोई भी बदलाव उपमहाद्वीप की पूरी आबादी की रोज़ी-रोटी को बाधित करेगा। इसी तरह, समुद्र के स्तर में वृद्धि श्रीलंका और मालदीव के द्वीप राष्ट्रों और पाकिस्तान, भारत और बांग्लादेश में निचले तटीय मैदानों से लगे इलाक़ों में रहने वाले लोगों को प्रभावित करेगी। प्रभावित आबादी के द्वारा बड़े आंतरिक, और साथ ही सीमापार, प्रवास हो सकते हैं, और यह भारी सामाजिक और आर्थिक विस्थापन और तनाव का कारण होगा।

लेकिन मानसून के बदलते स्वरूपों, ग्लेशियरों के पिघलने, या समुद्र के स्तर में वृद्धि को समझने की दिशा में दक्षिण एशियाई देशों के बीच वस्तुतः कोई सहयोग नहीं है - अनुकूली प्रतिक्रियाओं पर विचार करना तो दूर की बात है। इन मुद्दों पर अपने पड़ोसी देशों के साथ जुड़ना भारत के हित में है; ये ऐसी चिंताएं हैं जिन्हें बहुपक्षीय एजेंडे पर भी रखा जाना चाहिए।

यूएनएफ़सीसीसी के लिए अगला पार्टी सम्मेलन 2021 के अंत में ग्लासगो में आयोजित किया जाएगा। भारत को अपनी बातचीत की रणनीति पहले से सावधानीपूर्वक तैयार करनी चाहिए। इसे वर्तमान में और अपने भविष्य के प्रक्षेपवक्र दोनों में अपने हल्के कार्बन पदचिह्न को उजागर करना होगा। इसे चीन की तुलना में अपने सकारात्मक रिकॉर्ड को भी उजागर करना होगा और किसी भी वैश्विक जलवायु परिवर्तन व्यवस्था में एक पृथक और भिन्न बर्ताव की मांग करनी होगी। भारत को विकासशील देशों के बड़े वर्ग की ओर से - विशेष रूप से, वित्तीय और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और समानता और जलवायु न्याय के सिद्धांत के पालन के महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाकर - उन देशों से भी संपर्क साधना होगा। हमें विकासशील देशों के लिए एक प्रमुख आवश्यकता के रूप में जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन की ओर भी अंतरराष्ट्रीय ध्यान आकर्षित करना होगा, क्योंकि

निवारण के कठोर उपायों के होते हुए भी ग्रीन हाउस गैसों के मौजूदा भंडार के कारण जलवायु परिवर्तन की चुनौती सौ साल से अधिक समय तक बनी रहेगी। भारत को जलवायु परिवर्तन पर कार्रवाई का सारा ज़ोर शमन पर केंद्रित होने से हटाने और अनुकूलन को बहुपक्षीय वार्ता के एजेंडे में उच्च स्थान दिलाने के प्रयास का नेतृत्व करना होगा।

पिछले एक दशक में, हमने भारत को इस वर्ग से दूर कर दिया है। चीन के साथ समूहबद्ध होने या विशिष्ट जन में गिने जाने के लालच के कारण इस तथ्य की अनदेखी न हो जाए कि उन्नत पश्चिमी देशों के हित और नज़रिये हमारे और अन्य विकासशील देशों से भिन्न हैं। पेरिस में, भारत की बात एक प्रमुख भागीदार के रूप में कराए जाने के इसी दृष्टिकोण ने भारत को यूएनएफ़सीसीसी की पार्टियों द्वारा प्रतिबद्धताओं को निर्धारित करने में एक अनिवार्य कारक के रूप में ऐतिहासिक ज़िम्मेदारी पर अपने लंबे समय के आग्रह को त्यागने के लिए प्रेरित किया। हमें फिर से नहीं फंसना चाहिए: मसलन, दबाव में आकर, अपने उत्सर्जन के लिए चरम वर्ष या कार्बन तटस्थता प्राप्त करने की तारीख़ का संकेत देने के लिए।

हमारी जलवायु परिवर्तन कूटनीति को नया रूप देना तत्काल रूप से आवश्यक हो गया है और विकासशील देशों के बीच हमारी नेतृत्व की भूमिका को पुनः प्राप्त करने के लिए एक शीघ्र शुरुआत करनी होगी। इसे अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन के माध्यम से, जिसका मुख्यालय भारत में है, द्विपक्षीय सहयोग के द्वारा भी मज़बूत किया जा सकता है। पारिस्थितिक संकट से निपटने में, भारत को न केवल जलवायु परिवर्तन के मोर्चे पर बल्कि अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता सम्मेलन (आईबीसी) के तहत बहुपक्षीय वार्ताओं में भी एक सक्रिय भागीदार होना चाहिए। यूएनएफ़सीसीसी और आईबीसी आपस में घनिष्टता से जुड़े हुए हैं और इसके लिए एक अच्छी तरह से समन्वित वार्ता रणनीति की ज़रूरत है। भारत जैव-विविधता में समृद्ध है और इसे प्राकृतिक संपदा का भंडार माना जाना चाहिए। हम इस जैव-विविधता का जिस तरह उपयोग करते हैं उसका जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव पड़ता है, और इसके उलट भी। फिर भी इन पर अलग-अलग काम किया जाता है। यह अनिवार्य है कि घरेलू नीति निर्माण और बहुपक्षीय वार्ताओं दोनों में ही इनसे निपटने के लिए इन्हें एक साथ लाया जाए।

जलवायु परिवर्तन सहित पारिस्थितिक रूप से सतत विकास पर एक विश्वसनीय और प्रभावी राष्ट्रीय रणनीति तैयार करने में, भारत न केवल कमज़ोर बल्कि अनुपस्थित संस्थागत तंत्र से ग्रस्त है। इसके लिए मज़बूत और कठोर अनुसंधान और विश्लेषणात्मक क्षमताओं से लेकर नीति समन्वय और कार्यान्वयन तक जैसी चीज़ों की आवश्यकता है। व्यापक और विश्वसनीय आंकड़ों और विश्लेषण के बिना, नीति निर्माण तदर्थ और असंगठित हो जाता है। यहां तक कि जब उच्च गुणवत्ता वाले आंकड़े और विश्लेषण उपलब्ध होते हैं, तब भी नीतिगत विकल्पों पर एक ऐसे आधिकारिक निकाय में सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता होती है जहां सभी हितधारकों का प्रतिनिधित्व हो। जलवायु परिवर्तन पर प्रधानमंत्री परिषद एक ऐसी संस्था हो सकती है, लेकिन इसे सलाह और नीतिगत विकल्प देने के लिए संस्थागत और सशक्त बनाने की आवश्यकता है।

एक प्राधिकरण बनाने की आवश्यकता है जो यदि प्रधानमंत्री कार्यालय में हो तो बेहतर है या फिर उसी तरह से एक राष्ट्रीय पारिस्थितिकी आयोग हो जैसे अंतरिक्ष आयोग है या परमाणु ऊर्जा आयोग है, या इस रिपोर्ट में पहले सुझाया गया समुद्री आयोग हो सकता है, जिसकी अध्यक्षता ख़ुद प्रधानमंत्री के पास हो, और जिसके पास संबंधित मंत्रालयों और एजेंसियों को एक साथ लाने और अंतर-एजेंसी समन्वय और कार्यान्वयन सुनिश्चित करने की शक्ति हो। अधिकांश सतत विकास लक्ष्यों को बहु-विषयक और अंतर-कार्यक्षेत्र दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है: केवल एक अधिकार प्राप्त एजेंसी ही अंतर-मंत्रालयी और अंतर-एजेंसी नीति निर्माण और मध्यवर्तन सुनिश्चित कर सकती है। यह न केवल घरेलू नीति बनाने के लिए बल्कि उपयुक्त बहुपक्षीय वार्ता रणनीतियां तैयार करने में भी कारगर होगा।

यदि आने वाले दशक में इस तरह का एक संस्थागत ढांचा बनाया और चालू कर दिया जाए, तो हम एंथ्रोपोसीन के आने वाले संकटों का सामना करने के लिए बेहतर स्थिति में होंगे। राज्य सरकारों को भी पारिस्थितिक संकट और विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन से निपटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। केंद्र-राज्य परामर्श और समन्वय अनिवार्य है और इसे अंतर-राज्य परिषद या इस महत्वपूर्ण विषय से निपटने के लिए विशेष रूप से स्थापित एक अंतर-राज्य तंत्र के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

भारत का विकास पथ चीन के अत्यधिक ऊर्जा-गहन विकास पथ जैसा नहीं बन सकता। इसका कारण न केवल सीमित वैश्विक संसाधन हैं, बल्कि देश के भीतर और दुनिया दोनों में जलवायु परिवर्तन और पारिस्थितिक चिंताएं भी हैं। भारत अभी भी अपने आधुनिक विकास पथ के प्रारंभिक दौर में है, इसलिए अभी इसका विकास ऊर्जा-गहन पैटर्न में नहीं आया है। इसके अधिकांश बुनियादी ढांचे का निर्माण किया जाना अभी शेष है। रेट्रो-फ़िटिंग की कोई बड़ी क़ीमत नहीं है, जैसा कि औद्योगिक देशों या चीन के मामले में है। उच्च गुणवत्ता वाली उन्नति और विकास के लिए एक वैकल्पिक मार्ग पूर्णतया संभव है।

अध्याय 7:
विकास, समावेश और भारत

भारत के लिए सबसे अच्छी विदेश नीति दोहरे अंकों की विकास दर है। लेकिन समावेश के बिना विकास अर्थव्यवस्था को सक्षम करने के बजाय कमज़ोर कर देगा। आने वाले दशक में, आर्थिक विकास का नेतृत्व निर्यात और निजी निवेश, और भौतिक और मानव पूंजी में बड़े पैमाने पर निवेश द्वारा होगा। इसके लिए आवश्यकता बाज़ारोन्मुखी आर्थिक सुधारों के प्रति निरंतर प्रतिबद्धता, व्यापार के क्षेत्र में खुलेपन, और साथ ही साथ रोज़गार-गहन विकास को संभव बनाने की है। इसके लिए भारतीय राज्य को मानव पूंजी के निर्माण में वित्तीय और प्रशासनिक रूप से निवेश करने की भी आवश्यकता होगी। भारत को वित्तीय, प्रशासनिक और संस्थागत आयामों में राज्य की क्षमता को बढ़ाने की ज़रूरत होगी। कमज़ोर पड़ते संघवाद के लक्षणों के साथ-साथ केंद्रीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति को रोके जाने की ज़रूरत है। विकेंद्रीकरण और सरकार के निचले स्तरों तक शक्ति का हस्तांतरण एक अनिवार्यता है।

आर्थिक विकास की समीक्षा

डॉलर में समायोजित क्रय शक्ति समता (पीपीपी) में मापी जाने पर भारत की अर्थव्यवस्था दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। पीपीपी समायोजन के बिना भी, 2020 में 2.7 ट्रिलियन डॉलर के आकार में, भारत शीर्ष छह अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। पिछले दो दशकों में इसकी औसत वृद्धि दर डॉलर में मापी गई 9 प्रतिशत प्रति वर्ष पर प्रभावशाली दर है। सहस्राब्दी की शुरुआत से अब तक यह आकार में पांच गुना से अधिक बढ़ चुकी है। भारतीय अर्थव्यवस्था की तीन विशेषताएं ध्यान देने योग्य हैं। पहली, इसकी अपेक्षाकृत उच्च वृद्धि में सेवाएं सबसे आगे रही हैं, और इसके सकल घरेलू उत्पाद में उद्योग या विनिर्माण के हिस्से में वृद्धि नहीं हुई है। इस प्रकार, सेवा क्षेत्र का पदचिह्न (चीन के 40 से कम के मुक़ाबले) लगभग 65 प्रतिशत तक बढ़ गया है, जबकि कृषि सिकुड़कर 15 प्रतिशत से कम हो गई है। फिर भी कृषि आधी आबादी के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आजीविका का स्रोत बनी हुई है। दूसरी, भारत एकमात्र बड़ी एशियाई अर्थव्यवस्था है, जिसमें लगातार चालू लेखा घाटा रहा है लेकिन फिर भी इसने विदेशी मुद्रा का एक बड़ा भंडार जमा किया है, जो वर्तमान में दुनिया में चौथे पायदान पर है। इसलिए, पिछले दो दशकों से, विदेशी पूंजी का अंतर्वाह विदेशी खाते में डॉलर की कमी की भरपाई करने से भी अधिक रहा है। यह भारत की विकास संभावनाओं में विदेशी निवेशकों के भरोसे को दर्शाता है। तीसरी, भारत के विकास का अनुभव देश के भीतर के क्षेत्रों और राज्यों में भिन्न रहा है। आमतौर पर, पिछड़े राज्यों को उच्च विकास दर प्रदर्शित करनी चाहिए, और इसमें एक अपेक्षित समग्र अभिसरण होता है। लेकिन इसके

विपरीत, हम सबसे अमीर और सबसे ग़रीब राज्यों के बीच प्रति व्यक्ति आय का अनुपात कम होने के बजाय बढ़ने के साथ भिन्नता देखते हैं। यह देश के भीतर श्रम और पूंजी की अपेक्षाकृत आज़ाद आवाजाही के बावजूद क़ायम है। यह तीसरा पहलू आने वाले वर्षों में संघवाद की खींचतान का कारण बन सकता है।

विकास गतिकी

पिछले दो दशकों के दौरान उच्च औसत विकास के बावजूद, यह असमान था - 2003 और 2011 (वैश्विक वित्तीय संकट के वर्ष 2009 को छोड़कर) के बीच उच्च विकास देखा गया और 2017 के बाद से लगातार गिरावट आई। पहले दशक में विकास ऋण, निवेश, और साथ ही निर्यात में उछाल से प्रेरित था, और दूसरे दशक में ज़्यादातर खपत और वित्तीय समर्थन से। पहले दशक के दौरान, सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में लगातार बढ़ते व्यापार और साथ ही पर्याप्त पूंजी प्रवाह ने भारतीय अर्थव्यवस्था के निरंतर बढ़ते खुलेपन को रेखांकित किया। 2010 से पहले, मज़बूत अंतर्वाह ने मुद्रा को घटते अनुपात के बजाय चढ़ते अनुपात पर रखा। यही विशेषता अन्य उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में भी देखी गई थी।

बीजिंग ओलंपिक से पहले वैश्विक अर्थव्यवस्था ने कमोडिटी की क़ीमतों में उछाल देखा, और वैश्विक व्यापार में मज़बूती के साथ वृद्धि हुई - एक प्रवृत्ति जो अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं में अपेक्षाकृत उच्च विकास के रूप में परिलक्षित हुई। सदी के मोड़ पर, भारत के सॉफ़्टवेयर और सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्रों को भी अन्य कारकों के साथ ही वैश्वीकरण, डॉट कॉम उन्माद और वाई2के की खलबली से काफ़ी प्रोत्साहन मिला। पूर्ण और प्रति व्यक्ति दोनों दृष्टि से मज़बूत आय वृद्धि के कारण, भारत 2005 और 2015 के बीच 270 मिलियन लोगों को पूर्ण ग़रीबी से बाहर निकालने में सक्षम रहा। फिर भी, कुल रोज़गार सृजन - यहां तक कि उच्च विकास चरण के दौरान भी - जनसांख्यिकीय वृद्धि के अनुपात में आवश्यक गति से पीछे रह गया। भारत के कार्यबल में जनसंख्या की तुलना में लगभग 1 प्रतिशत तेज़ी से बढ़ोतरी होती है और निकट भविष्य में भी ऐसा ही रहेगा। इसके नतीजे में हर साल कम से कम एक करोड़ नई नौकरियों की संभावित मांग पैदा होती है, और परिणामस्वरूप कम से कम पांय लाख नए उद्यम पैदा होते हैं। उच्च विकास प्रदर्शन अच्छी गुणवत्ता, उच्च उत्पादकता वाली नौकरियों या उद्यमों में आनुपातिक वृद्धि से मेल नहीं खाता है। वास्तव में, युवा बेरोज़गारी एक वैश्विक चुनौती है - जिसे हाल ही में स्वचालन की ओर बढ़ते रुझान के साथ-साथ निवेश में ठहराव ने बदतर बना दिया है।

भारत वॉल स्ट्रीट पर 2008 के लेहमैन पतन और उसके बाद के वैश्विक वित्तीय संकट (जीएफ़सी) के प्रभाव का भी बेहतर ढंग से सामना करने में सक्षम रहा, जो 1930 के दशक के बाद से पश्चिमी जगत के सबसे भयंकर आर्थिक संकटों में से एक था। इस पतन से पहले सक्रिय और विवेकपूर्ण मौद्रिक नीति के सख़्त होने के साथ-साथ बाद में एक मज़बूत वित्तीय और तरलता प्रोत्साहन की बदौलत, 2009 में विकास में मंदी के बाद के वर्षों में विकास दर वापस 8-9 प्रतिशत तक आ गई। कोविड महामारी और मंदी के प्रति भारत की अर्थव्यवस्था की प्रतिक्रिया

एक अलग मामला है जिस पर इस अध्याय में बाद में चर्चा की गई है।

वैश्विक वित्तीय संकट के मद्देनज़र मज़बूत राजकोषीय प्रोत्साहन आवश्यकता से अधिक लंबा और परिमाण में अत्यधिक बड़ा साबित हुआ, और इसे समयबद्ध तरीक़े से वापस नहीं लिया गया। इसलिए 2011 के अंत से, अर्थव्यवस्था बहुत ज़्यादा ताप के संकेत दिखाने लगी, और मुद्रास्फीति कई वर्ष तक ऊंचाई पर अड़ी रही। निरंतर दो अंकों की मुद्रास्फीति, बढ़ते चालू लेखा घाटे और विनिमय दर में तीव्र गिरावट के संदर्भ में भारत की व्यापक आर्थिक कमज़ोरी सामने आ गई। इसमें 2013 की गर्मियों में वैश्विक वित्तीय बाज़ारों के प्रसिद्ध "टेपर टैंट्रम" के कारण और बढ़ोतरी हुई। विश्लेषकों ने भारत को उन "नाज़ुक पांच" अर्थव्यवस्थाओं में गिनना शुरू कर दिया, जो विदेशी प्रवाह के बड़े उलटाव की स्थिति में बेहद कमज़ोर थीं, और जिनके बारे में बड़े पैमाने पर विकास मंदी की भविष्यवाणी की गई थी। दिलचस्प बात यह है कि इन पांच में से तीन अर्थव्यवस्थाएं प्रसिद्ध ब्रिक्स समूह से थीं, जिन्हें उच्च और सतत विकास की दीर्घकालिक संभावना वाली अर्थव्यवस्थाओं के रूप में जाना जाता है।

2012 के बाद यह स्पष्ट हो चुका था कि विकास के उत्प्रेरक निवेश और निर्यात नहीं रहे थे, बल्कि खपत थी - जिसमें सरकारी घटक महत्वपूर्ण था। इसके परिणामस्वरूप राजकोषीय स्थिति में भी तेज़ गिरावट आई। पिछले दशक की राजकोषीय बुद्धिमानी के लाभ लगातार नष्ट होते गए और व्यापक आर्थिक कमज़ोरी के कारण और बिगड़ गए। पिछले दशक के कुछ अतिरेकों के फलस्वरूप बैंकिंग क्षेत्र में भी परेशानियां खड़ी हो गईं। अत्यधिक ऋण वृद्धि ने बक़ाया ऋण की घटनाओं में वृद्धि की संभावना को जन्म दिया। इसे जुड़वां बैलेंस शीट समस्या के रूप में भी जाना जाता है। कॉरपोरेट और बैंक दोनों की बैलेंस शीट में बहुत अधिक तनाव आ गया था। इसकी गंभीरता बढ़ने के कई कारक थे। पहला, सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि में सुस्ती आ रही थी जिससे कॉरपोरेट लाभप्रदता और ऋण चुकाने की क्षमता पर दबाव पड़ रहा था। दूसरा, बिगड़ती विनिमय दर के कारण विदेशी ऋण अदेय हो गए थे। तीसरा, बैंकों के सामने ऐसी बुनियादी इंफ्रास्ट्रक्चर परियोजनाओं का अपेक्षाकृत बड़ा जोखिम था जो देरी और विवादों में फंस जाते थे, विशेष रूप से पब्लिक-प्राइवेट-पार्टनरशिप (पीपीपी) मॉडल में। इन इंफ्रास्ट्रक्चर ऋणों ने अनर्जक ऋणों के बढ़ते अनुपात में योगदान दिया। अंत में, 2014 के बाद, केंद्रीय बैंक ने बैंक बैलेंस शीट की गहन परिसंपत्ति गुणवत्ता समीक्षा की स्थापना की, जिसने बैंकों को ख़राब ऋण समस्या के वास्तविक पैमाने को प्रकट करने के लिए बाध्य कर दिया।

वैश्विक दीर्घकालिक ठहराव

2008 के वैश्विक वित्तीय संकट की प्रतिक्रिया तीव्र, समन्वित और व्यापक थी। अमेरिका, यूरोपीय संघ और जापान के केंद्रीय बैंकों ने ब्याज दरें रिकॉर्ड सीमा तक घटा दीं, और भरपूर चल परिसंपत्ति लगा दी। ग्रीस, इटली, पुर्तगाल और स्पेन जैसी अर्थव्यवस्थाओं की ऋणग्रस्तता में तेज़ वृद्धि के कारण वैश्विक वित्तीय संकट के तुरंत बाद यूरोप में राजकीय ऋण का संकट पैदा हो गया। इसके नतीजे में भी और मौद्रिक सहजता आई। पिछले एक दशक में, उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में केंद्रीय बैंकों की बैलेंस शीट

के आकार में लगभग 400 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। विश्व स्तर पर "धन निर्माण" का पैमाना इस प्रकार का था। यह कोविड महामारी से पहले की बात थी, जिसके बाद मुद्रा आपूर्ति और भी तेज़ी से बढ़ी। लेकिन, 2008 के बाद से विकास दर में या रोज़गार की दरों में वृद्धि मौद्रिक प्रोत्साहन के अनुरूप नहीं थी। बेशक अमेरिकी अर्थव्यवस्था में 2009 के बाद आठ वर्षों तक लगातार विस्तार हुआ, लेकिन उस विस्तार को प्राप्त करने के लिए तैनात की गई "गोलाबारी" काफ़ी असंगत थी। नौकरियों के विस्तार का परिणाम न तो वेतन वृद्धि में हुआ, न ही औसत घरेलू आय में। तरलता की भरमार के नतीजे में, अधिकांश पैसा स्टॉक और आवास जैसे परिसंपत्ति बाज़ारों में प्रवाहित हुआ। यहां तक कि उन सट्टा निवेशकों ने कमोडिटी बाज़ारों को भी नहीं बख़्शा, जिन्हें सस्ती ब्याज मुद्रा उपलब्ध थी। संपत्ति की बढ़ती क़ीमतों ने धन की असमानता को और बिगाड़ दिया है, क्योंकि संपत्ति का स्वामित्व मूल रूप से अमीरों के पास है। बढ़ती असमानता के राजनीतिक प्रतिघात के रूप में "वॉल स्ट्रीट पर क़ब्ज़ा" जैसे आंदोलन, ब्रेक्सिट वोट और राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप का चुनाव हुआ।

कई अर्थशास्त्रियों का मानना है कि विकसित अर्थव्यवस्थाएं, या वास्तव में दुनिया का अधिकांश भाग "दीर्घकालिक ठहराव" के एक विस्तारित चरण में है। यह कम ब्याज दरों की लंबी और अनिश्चित अवधि, गतिहीन उत्पादकता वृद्धि और औद्योगिक निवेश, और युवा बेरोज़गारी की उच्च दर में दिखाई देता है। इसके शीर्ष पर वैश्वीकरण से आंशिक रूप से पीछे हटना पड़ा, क्योंकि कई देशों ने नए व्यापार अवरोध लगा दिए और अमेरिका और चीन के बीच व्यापारिक टकराव बढ़ गया। इसके परिणामस्वरूप वैश्विक व्यापार धीमा पड़ गया, जो सहस्राब्दी के पहले दशक के दौरान वैश्विक विकास के प्रमुख चालकों में से एक था। पूर्व अमेरिकी ट्रेज़री सचिव लैरी समर्स का मानना है कि दीर्घकालिक ठहराव हमारे दौर की प्रमुख व्यापक आर्थिक चुनौती हो सकती है। वे विश्व भर में आक्रामक मौद्रिक प्रोत्साहनों की अप्रभाविता के संदर्भ में यह बात कर रहे थे। विकास को गति देने का एकमात्र तरीक़ा आक्रामक राजकोषीय नक़दी को बढ़ाना प्रतीत होता है, जो कि अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं की पहले से ही तंग वित्तीय स्थिति से त्रस्त है। 2020 की महामारी ने राजकोषीय उपायों की आवश्यकता को और अधिक स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है।

महामारी से पहले धीमा होता विकास

दीर्घकालिक ठहराव के कम तीव्र स्वरूप का भारत ने भी अनुभव किया है। 2016-17 के बाद से, वार्षिक वृद्धि दर लगातार घटते हुए 2019-20 की 8 प्रतिशत से 4 प्रतिशत हो गई है। यह 2020 की महामारी से पहले था। इस चार साल की अवधि में अर्थव्यवस्था में दो बड़े व्यवधान आए। एक था विमुद्रीकरण का कठोर क़दम जिसने सर्कुलेशन में चल रही मुद्रा का 86 प्रतिशत अचानक निकाल लिया; दूसरा देशव्यापी माल और सेवा कर (जीएसटी) का प्रारंभ था, जिसमें गंभीर शुरुआती समस्याएं थीं। दोनों ही क़दम सुधारवादी आशय से प्रेरित थे, लेकिन इसके बजाय इनका बड़े अनौपचारिक क्षेत्र पर तत्काल और गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। जीएसटी सुधार से अंततः बेहतर कर अनुपालन और उच्च आर्थिक विकास होने की उम्मीद है। लेकिन

वर्तमान में यह त्रुटिपूर्ण ढंग से लागू किया गया है, और दरें बहुत भारी हैं।

इन पिछले चार वर्षों के दौरान, निवेश और जीडीपी का अनुपात, जो कि भविष्य के विकास का एक विश्वसनीय संकेतक है, 2008-09 के दौरान देखे गए 38 प्रतिशत के शिखर की तुलना में लगभग 28 प्रतिशत पर स्थिर रहा है। 2015 से पांच वर्षों में निर्यात वृद्धि संचयी रूप से शून्य रही है। इनमें से कुछ का कारण 2015 और 2016 के दौरान तेल की क़ीमतों में भारी गिरावट को माना जा सकता है। भारत के व्यापारिक निर्यात का पांचवां हिस्सा पेट्रोल और डीज़ल हैं, जिनका डॉलर मूल्य बड़ी हद तक कच्चे तेल की अंतरराष्ट्रीय क़ीमत पर निर्भर होता है। लेकिन साथ ही, देखने वाली बात यह भी है कि इन वर्षों के दौरान, बांग्लादेश, वियतनाम और कोरिया जैसी अर्थव्यवस्थाओं ने निर्यात में दोहरे अंकों की वृद्धि हासिल की।

भारत के बैंकों की अनर्जक परिसंपत्तियां - ख़राब ऋण अनुपात - 2015 के 5.4 प्रतिशत से निरंतर बढ़ते हुए 2019 तक 10 प्रतिशत के लगभग पहुंच गईं। इसका मतलब यह था कि बैंकों को घाटे की भरपाई के प्रावधान के लिए पूंजी अधिक रखनी पड़ी और नए ऋण देने की उनकी क्षमता बाधित हो गई। कई बैंकों को सुधारात्मक उपाय करने पड़े, जिसके कारण वे कोई भी ऋण देने से वंचित रहे। इससे भी उनकी लाभप्रदता बुरी तरह प्रभावित हुई। इसके परिणामस्वरूप होने वाली कम ऋण वृद्धि का भी औद्योगिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

कोविड महामारी के दौरान और बाद में

इसलिए 2008 के बाद का वैश्विक आर्थिक संदर्भ एक लंबे समय तक दीर्घकालिक ठहराव का है। कम ब्याज व्यवस्था के साथ जुड़ी यह अत्यंत ढीली मौद्रिक नीति, विशेष रूप से कोविड महामारी के गंभीर प्रभाव की रोशनी में, कई वर्षों तक जारी रहेगी। 2018 के बाद से, अमेरिका-चीन व्यापारिक टकराव की बदौलत, वैश्विक स्तर पर संरक्षणवाद भी बढ़ा है, क्योंकि देश बेरोज़गारी में वृद्धि या पारिश्रमिक और उत्पादकता के ठहराव से जूझने की कोशिश में लगे हुए हैं। कोविड महामारी और उसके नतीजे में होने वाले लॉकडाउन ने अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं में एक तीव्र संकुचन पैदा कर दिया है, और अब इसी ने रिकवरी और विकास को प्रोत्साहित करने के लिए बड़े पैमाने पर राजकोषीय सहायता देने के लिए एक बहाना प्रदान किया है। इस भारी राजकोषीय ख़र्च ने सरकारी क़र्ज़ को बढ़ा दिया है। यह उच्च करों का पूर्वसूचक है - जो ऋण को सीधे-सीधे नकार देने से कुछ ही कम है। दुनिया भर में न्यूनतम कॉरपोरेट कर दरों को 15 प्रतिशत तक बढ़ाने के लिए अमेरिका के नेतृत्व वाली पहल को लोकप्रिय स्वीकृति मिली है। मुद्रा आपूर्ति की प्रचुरता ने परिसंपत्ति के मूल्यों में भी वृद्धि की है, जो आय और धन की असमानता को और बढ़ा रही है। नतीजतन, हमें अधिकांश देशों के वित्तीय बाज़ारों के स्वास्थ्य और अंतर्निहित आर्थिक प्रदर्शन के बीच एक अजीब वियोजन सा देखने को मिल रहा है। लेकिन, क़र्ज़ और विकास की स्थिरता को लेकर चिंताएं बनी हुई हैं। चीन में क़र्ज़ की अधिकता ज़्यादा तीव्र है, जबकि नीति निर्माता ऋण की वृद्धि पर लगाम कसने की कोशिश में लगे हुए हैं। इस सबके बीच, दुनिया चीन के आक्रामक रुख़ से निपटना सीख रही है,

जिसकी टकराव की मुद्रा और जुझारूपन से कई देश प्रभावित हुए हैं।

वैश्विक आर्थिक शासन का भाग्य भी अधर में लटका हुआ है। विश्व व्यापार संगठन अप्रभावी बन गई था, क्योंकि इसका महत्वपूर्ण विवाद निपटान पैनल नई नियुक्तियों के अवरुद्ध होने से बाधित हो गया था। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रभाव पर वैश्विक पूंजी के बड़े निजी सीमा पार प्रवाह और निजी रेटिंग एजेंसियों का प्रभाव हावी हो गया है। आईएमएफ़ के भीतर मतदान शक्तियों के सुधार पर अभी काम किया जाना बाक़ी है। विश्व बैंक और विश्व स्वास्थ्य संगठन का भी महत्व और प्रभाव कम हो गया है।

कोविड महामारी ने सभी अर्थव्यवस्थाओं को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है, हालांकि चीन 2020 के दौरान एक सकारात्मक आर्थिक विकास हासिल करने में कामयाब रहा। महामारी के बाद की रिकवरी असममित है, क्योंकि विकसित देशों में टीकाकरण तेज़ी से हो रहा है, और इसीलिए वे तेज़ी से ठीक हो रहे हैं। 2021 के दौरान, विशेषकर विकसित अर्थव्यवस्थाओं में, टीका आशावाद और बड़े राजकोषीय प्रोत्साहन के कारण वैश्विक विकास और रिकवरी बहुत मज़बूत रही। भारत में भी 2021 में भले ही मुनाफ़े पर आधारित, लेकिन तेज़ आर्थिक सुधार दर्ज करने की उम्मीद थी। लेकिन 2021 के अप्रैल और मई के दौरान घातक दूसरी लहर ने अन्यथा मज़बूत रिकवरी को धचका पहुंचाया है। इसने स्वास्थ्य सेवा के इंफ़्रास्ट्रक्चर के पास तैयारी न होने और इसमें निवेश को पर्याप्त रूप से बढ़ाने की आवश्यकता को भी उजागर किया। महत्वपूर्ण रूप से, रिकवरी के शुरुआती रुझान ने संकेत दिया कि 2020 में रिकवरी मुख्य रूप से असमान थी और श्रम बाज़ार और उन छोटे और मध्यम उद्यमों की क्षमता पर गंभीर दाग़ छोड़ जाने के जोखिम वाली थी, जिनमें भारत की अधिकांश आबादी काम करती है। दूसरी लहर के झटके और असमान रिकवरी के परिणामस्वरूप, 2022 के अंत तक, भारत की जीडीपी दो साल पहले के अपने स्तर से बमुश्किल ही ऊपर होगी। इसका मतलब है अपर्याप्त रोज़गार सृजन और निवेश ख़र्च में भारी अवसर लागत।

अब विकास को निजी निवेश में वृद्धि और निर्यात के शानदार प्रदर्शन पर बहुत अधिक निर्भर रहना होगा। अनर्जक ऋणों और बट्टा खाते के बड़े बोझ के कारण, विकास पर दबाव बैंकिंग और बीमारू बिजली क्षेत्र से आएगा। महामारी के बाद के वर्षों के दौरान, विकसित अर्थव्यवस्थाओं में मज़बूत विकास निर्यात वृद्धि में नई जान फूंकने और औद्योगिक और सेवाओं के निर्यात की हिस्सेदारी बढ़ाने का अवसर प्रदान करता है। इसके लिए एक उपयुक्त निर्यात प्रोत्साहन नीति की ज़रूरत है, जो वित्तीय प्रोत्साहनों और सक्षम विनिमय दर नीति द्वारा समर्थित हो। चीन 2020 में भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार बना हुआ है। चीन का विकास और इसके परिणामस्वरूप उच्च मांग दुनिया भर में कमोडिटी की क़ीमतों में इज़ाफ़े के लिए आंशिक रूप से ज़िम्मेदार है। राजकोषीय घाटे के दबाव के कारण महंगाई की यह प्रवृत्ति जारी रहने की संभावना है।

विकास और सुधारों के लिए आगे की राह

जब हम अगले दशक की ओर देखते हैं, तो ऐसे कई क्षेत्र हैं, जिनका अगर सही तरीक़े से उपयोग किया जाए तो भारत के लिए एक सकारात्मक

विकास परिदृश्य सामने आ सकता है। सबसे पहले, जुड़वां बैलेंस शीट की समस्या। बैंकों और कॉरपोरेट दोनों ने अपने क़र्ज़ों को काफ़ी हद तक कम कर दिया है। उचित पूंजी प्रवाह और निजीकरण के साथ, बैंक बैलेंस शीट इतनी स्वस्थ हो सकती है कि जीडीपी के तेज़ विकास को संभव बनाने के लिए मज़बूत ऋण वृद्धि प्रदान कर सके। जीएसटी प्रणाली भी अपनी मौजूदा शुरुआती समस्याओं से उबरकर बेहतर ढंग से काम सकती है। यदि पेट्रो-उत्पादों और बिजली को जीएसटी में शामिल कर लिया जाए, तो यह उच्च आर्थिक विकास और बेहतर राजस्व संग्रह के अपने वादे को पूरा कर सकता है। अन्य बड़े सुधार - दिवालियापन क़ानून संबंधी - से भी बेहतर ऋण अनुशासन और तनावग्रस्त संपत्तियों के लिए एक सक्रिय बाज़ार बनाने की उम्मीद है। आशा है कि महामारी के दौरान दीवाला क़ानून का अस्थायी निलंबन इसकी कुल प्रभाविता में सेंध नहीं लगाएगा। बड़े पैमाने पर निजीकरण की दिशा में सरकार का ज़ोर बड़ी मात्रा में अक्षम रूप से प्रबंधित उस पूंजी को मुक्त कर सकता है जो बहुत कम लाभ कमा रही है। महत्वाकांक्षी राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन, जिसमें 110 ट्रिलियन रुपए (लगभग 1.3 ट्रिलियन डॉलर) तक के निवेश की परिकल्पना की गई है, लघु और दीर्घावधि दोनों में विकास को एक बड़ा बढ़ावा दे सकती है। निजी निवेश को बहुत अधिक बढ़ाए बिना या मुद्रास्फीति और उच्च ब्याज दरों की शुरुआत किए बिना, इन आवश्यकताओं को पूरा करने की वित्तीय चुनौती अभी भी बनी हुई है।

कई बड़े जोखिम इस आशावादी परिदृश्य को पटरी से उतार सकते हैं। सबसे पहले, यू-टर्न समेत कर नीतियों में बार-बार के बदलावों का नियामक जोखिम, जिनमें से कई हाल के समय में हुए हैं। इन बदलावों ने अन्य कई क्षेत्रों के साथ ही दूरसंचार, अक्षत ऊर्जा, ई-कॉमर्स, औषधि जैसे क्षेत्रों को प्रभावित किया है। निवेशक उन बेशुमार नियमों को लेकर चिंतित नहीं हैं जिनका उन्हें पालन करना होता है, बल्कि नीतियों में स्थिरता, निरंतरता और पूर्वानुमेयता की कमी को लेकर चिंतित हैं। अंतरराष्ट्रीय मध्यस्थता पैनल ने दो बड़े मामलों में भारत के टैक्समैन के ख़िलाफ़ फ़ैसला सुनाया है। कर क़ानूनों में पूर्वव्यापी बदलाव जैसी नीतियां बेतुकी लगती हैं और विदेशी और घरेलू दोनों तरह के निवेशकों को हतोत्साहित कर सकती हैं। ऐसे में देश से बाहर निवेश में वृद्धि की एक स्पष्ट प्रवृत्ति है, जो संभवतः घरेलू निवेश के प्रति विश्वास में गिरावट का संकेत है। दूसरा, पुराने लाइसेंस-राज की जगह धीरे-धीरे इंस्पेक्टर-राज ने ले ली है। ज़रूरत से ज़्यादा निरीक्षण और नौकरशाही के बजाय अपवाद द्वारा विनियमन की ओर बढ़ना महत्वपूर्ण है। प्रोडक्शन लिंक्ड इंसेंटिव (पीएलआई) योजना जो घरेलू उत्पादन को बढ़ावा देने और प्रोत्साहित करने का प्रयास करती है, नौकरशाही नियंत्रण और विनियमन की बहुतायत का एक उदाहरण है।

तीसरा जोखिम बढ़ती आय, धन और क्षेत्रीय असमानता का है। आय असमानता उच्च आर्थिक विकास का एक स्वाभाविक परिणाम है, क्योंकि इसमें प्रमुख क्षेत्र आगे बढ़ते हैं और फिसड्डी पिछड़ जाते हैं। लेकिन कुल मिलाकर, आगे चलकर, व्यवसाय के क्षेत्रों या इलाक़ों में समानता की अपेक्षा की जाती है। लेकिन अगर असमानताएं एक सीमा से आगे बढ़ जाएं, तो यह आर्थिक विकास और स्थिरता के लिए हानिकारक हो जाती है। भारत की वर्तमान

वास्तविकता यही है। स्थानिक और धन असमानता तेज़ी से बढ़ती जा रही है, विशेष रूप से पिछले दशक में। मौद्रिक नीति को कुछ हद तक न्यायसंगत पुनर्वितरण सुनिश्चित करना होगा। चौथा जोखिम "व्यापार करने में आसानी" के लगातार बिगड़ने से उपजा है। इस मामले में, कौशल और इंफ्रास्ट्रक्चर की उपलब्धता में आसानी जैसे कठोर मानदंड नहीं, बल्कि नर्म मानदंड महत्वपूर्ण हैं, जैसे: विवादों के निपटारे की गति, संपत्ति के अधिकारों और निवेशकों के अधिकारों का प्रवर्तन और संरक्षण। इसके लिए न्यायिक और नियामक संस्थानों को मज़बूत करने, उनकी स्वायत्तता और स्वतंत्रता की रक्षा करने और उनके प्रभावी कामकाज के लिए गुंजाइश देने की आवश्यकता है। यह वास्तव में हितधारकों और राज्य के बीच विश्वास की नींव को मज़बूत करने की राह है। एक अंतिम जोखिम हाल के समय में संरक्षणवाद की ओर अटपटा मोड़ है। लगभग आधे उत्पादों पर आयात शुल्क बढ़ाने का हालिया रुझान खुलेपन के प्रति भारत की प्रतिबद्धता के लिए अच्छा नहीं है। खुलेपन और उच्च विकास के बीच संबंध के बारे में 90 के दशक के सबक़ को भूलना नहीं चाहिए।

व्यापार में खुलेपन की अनिवार्यता

ग़रीबी से लड़ने, जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने और शक्ति को बाहरी रूप से पेश करने के लिए सबसे अच्छी रणनीति उच्च और समावेशी विकास हासिल करना है। इसके लिए घरेलू और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति का दोहन करने की आवश्यकता है। इसलिए खुलेपन को अनिवार्य समझकर अपनाया जाना चाहिए। यह न केवल वस्तुओं और सेवाओं के व्यापार को बल्कि वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं (जीवीसी) में निवेश और भागीदारी के प्रवाह को भी सक्षम बनाता है। भारत का अचानक, अंतिम समय में क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी से बाहर होना एक ग़लत मोड़ था। आसियान के साथ मुक्त व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर करने के दस वर्षों में, आयात और निर्यात दोनों चार गुणा बढ़ गए हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह कि अगर भारत आरसीईपी से बाहर ही रहने का निर्णय लेता है, तो आरसीईपी क्षेत्र के भीतर पूर्ण मूल्य श्रृंखला के लिए जगह तलाश करने की इच्छा रखने वाले भविष्य के निवेशक भारत के किसी हिस्से में बिज़नेस स्थापित करने से पहले दो बार सोचेंगे। मूल्य श्रृंखलाएं रोज़गार सृजन में योगदान करती हैं, भले ही व्यापार संतुलन नकारात्मक हो। चीन के साथ भारत का व्यापार घाटा संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ उसके पर्याप्त व्यापार अधिशेष के विपरीत है।

प्रत्येक द्विपक्षीय व्यापार संबंध को संतुलित करने का व्यापारिक रवैया कुल मिलाकर आत्मघाती है। भारत को सफलताओं (जैसे नोकिया) और अपनी विशेष आर्थिक क्षेत्र नीतियों की विफलताओं दोनों से सीखना चाहिए। हमें चाहिए कि एक नए अवतार में, हम उन्हें तटीय आर्थिक क्षेत्रों के रूप में स्थापित करें और सेज़ (एसईज़ेड) इकाइयों को घरेलू बाज़ार तक पहुंच बनाने की अनुमति दें। वैश्विक व्यापार में मंदी की परिस्थिति में भी, वैश्विक व्यापार में भारत की हिस्सेदारी निश्चित रूप से 1.5 से बढ़कर 3 प्रतिशत तक जा सकती है, जो कि मात्रा को दोगुना करना होगा। परिधान, इलेक्ट्रॉनिक सामान को असेंबल करने, फुटवियर, कृषि-प्रसंस्करण और पर्यटन जैसे श्रम केंद्रित क्षेत्रों पर ध्यान देने से ज़बरदस्त लाभांश मिल सकता है - लेकिन केवल तभी जब खुलेपन

को सही मायने में अपनाया जाए। 2019 में आरसीईपी से भारत का अंतिम समय में बाहर निकलना, खुले और मुक्त व्यापार के प्रति भारत के इरादे के बारे में एक ग़लत संकेत भेजता है।

दुनिया नक़दी के प्रवाह से भरी हुई है और दुनिया भर के निवेशक हर उस जगह धन का निवेश करेंगे जहां विकास की संभावनाएं सकारात्मक होंगी। भारत भी विकास का एक ऐसा ही ध्रुव है, और धन का एक संभावित बड़ा आकर्षण है। मज़बूत अंतर्वाह के हालिया उदाहरण इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। कुछ संवेदनशील क्षेत्रों को छोड़कर सभी क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की नीतियों का उदारीकरण निवेशकों को और अधिक प्रोत्साहित कर सकता है। लेकिन ऐसे निवेश के लिए जो वैश्विक मूल्य श्रृंखला के कुछ भागों को भारत में स्थापित कर सके, इसे क्षेत्र के साथ और अधिक मज़बूती से जुड़ने की आवश्यकता होगी।

सामाजिक समावेश और विकास

इस बात का कोई विकल्प ही नहीं है कि मानव पूंजी में निवेश विकास का ही एक भाग है। आने वाले दशक में जब भारत सतत विकास के पथ पर वापसी के प्रयास में होगा, तो उसे वर्तमान विकास पथ की भारी कमियों का सामना करना पड़ेगा - एक ऐसा पथ जिसने राष्ट्रीय आय में तो सुधार किया लेकिन मानव पूंजी में सहवर्ती सुधार करने में नाकाम रहा। उच्च विकास के बावजूद, भारत आज विश्व बैंक के मानव पूंजी सूचकांक में 157 देशों में से 115वें स्थान पर है, जो किसी देश के प्रदर्शन को पांच प्रमुख मानव विकास संकेतकों पर मापता है। महत्वपूर्ण रूप से, शीर्ष 1% और निचली 50% आबादी के बीच धन और आय में अंतर लगातार बढ़ता ही जा रहा है। अधिकांश भारत देश की विकास गाथा में सक्रिय सहभागी होने के बजाय अभी तक इसका दर्शक मात्र ही बना हुआ है।

किसी भी राज्य के तीन प्रमुख कार्य अपने नागरिकों को उनके जीवन और संपत्ति की सुरक्षा - विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा और कल्याण - स्वास्थ्य और शिक्षा प्रदान करना है। यह देश के विकास पथ की सबसे बड़ी पहेलियों में से एक है कि एक लोकतंत्र के रूप में भारत अपने नागरिकों को ये मूलभूत सुविधाएं प्रदान करने में बुरी तरह विफल रहा है। यह न केवल सभी नागरिकों को सामाजिक न्याय, समानता और स्वतंत्रता देना सुनिश्चित करने के लोकतांत्रिक उद्देश्य को कमज़ोर करता है, बल्कि विकास की संभावनाओं को भी कमज़ोर करता है। भारत जैसी गहरी असमानता और नतीजतन अंतर-पीढ़ीगत जड़ता वाली अर्थव्यवस्थाओं को कम आय वाले लोगों के लिए उच्च आय पैदा करने वाली आर्थिक गतिविधियों में भाग लेने के अवसरों को सीमित करके टिकाऊ दीर्घकालिक विकास के लिए असंगत बाधाओं का सामना करना पड़ता है। भारत में, निम्न आय से उच्च आय में यह संक्रमण विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण है क्योंकि विकास को बड़े पैमाने पर उच्च कौशल वाले सेवा क्षेत्रों से ही प्रोत्साहन मिला है। नतीजतन, अधिकांश भारत विकास और अंतर-पीढ़ीगत गतिशीलता की सीमित संभावनाओं के साथ कम कौशल और कम मज़दूरी के दुष्चक्र में फंसा हुआ है।

अगले दशक की भारत की विकास चुनौती के केंद्र में, कम कौशल-कम मज़दूरी के इस दुष्चक्र से बाहर निकलने की फ़ौरी आवश्यकता होगी। इसके लिए

मानव पूंजी में कहीं अधिक सरकारी निवेश की आवश्यकता है। तुलनात्मक जीडीपी वृद्धि वाले किसी भी अन्य देश की तुलना में भारत बुनियादी सार्वजनिक सेवाओं - स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा प्रबंध - के क्षेत्रों में सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में बहुत कम निवेश करता है। पुनर्वितरण की इन विफलताओं की प्रचंडता 2020 की शुरुआत में कोविड19 लॉकडाउन के दौरान दिखाई दी, जब भारत के लाखों शहरी श्रमिक बिना आय और आश्रय के शहरों में फंस गए थे। भारत के राजमार्गों के रास्ते घर तक की उनकी लंबी पैदल यात्रा कोविड19 पर भारत की प्रतिक्रिया को परिभाषित करने वाली छवि बन गई।

लेकिन सार्वजनिक सेवाओं की चुनौती वित्तीय निवेश से कहीं आगे जाती है। गुणवत्ता और परिणामों के प्रमुख पैमाने पर, भारत का प्रदर्शन निराशाजनक है। एनुअल सर्वे ऑफ़ एजुकेशन रूरल एक दशक से अधिक समय से इस बात को उजागर करता रहा है कि भारत में प्राथमिक विद्यालयों में पांच वर्ष पूरे करने के बाद भी लगभग 50% छात्र मुश्किल से ही कक्षा दो की किताबें पढ़ पाते हैं। कोविड के कारण स्कूल बंद होने के चलते इस बात की पूरी आशंका है कि इन अंतरों में काफ़ी वृद्धि हो गई होगी। प्राथमिक स्वास्थ्य भी गुणवत्ता से जुड़ी गंभीर चिंताओं से ग्रस्त है। भारत में सरकारी स्वास्थ्य सुविधाओं के अध्ययनों ने बार-बार बहुत अधिक ग़ैरहाज़री, और डॉक्टरों व स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं द्वारा दी जाने वाली देखभाल की निम्न गुणवत्ता की ओर इशारा किया है। भारत में सार्वजनिक वस्तुओं के नियोजन की गुणवत्ता में सुधार के लिए सार्वजनिक वस्तुओं के नियोजन को प्रभावी ढंग से प्रदान करने और विनियमित करने के लिए राज्य की तकनीकी और शासन क्षमताओं में उल्लेखनीय वृद्धि की आवश्यकता होगी। निरंतर उच्च विकास के लिए, सभी नागरिकों को सार्वजनिक सामान पहुंचाने के लिए सशक्त और सक्षम राज्य संस्थाएं एक आवश्यक शर्त हैं। आने वाले दशक में, भारत की विकास गाथा उस निवेश पर निर्भर करेगी जो भारत एक मज़बूत और सक्षम राज्य के निर्माण की दिशा में करने को तैयार है।

भारत की आपराधिक न्याय प्रणाली और इसके पुलिस बलों की कमज़ोरी ने, केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर, देश के लिए अपने नागरिकों को सार्वजनिक सुरक्षा प्रदान करने और त्वरित क़ानूनी निवारण सुनिश्चित करने को नामुमकिन बना दिया है। क़ानून और व्यवस्था राज्य का विषय है लेकिन अधिकांश राज्यों में क़ानून और व्यवस्था तंत्र में संसाधनों की भारी कमी के कारण लगातार कमी आती रही है और जो कुछ बचा है उसे अक्सर राजनीतिक संरक्षण और हस्तक्षेप भ्रष्ट कर देता है। पुलिस बल अपनी स्वीकृत संख्या से काफ़ी कम पर काम कर रहे हैं और वास्तव में स्वीकृत संख्या भी अंतरराष्ट्रीय मानदंडों से काफ़ी कम है। 2017 में, जो कि वह अंतिम वर्ष है जिसके आंकड़े उपलब्ध हैं, सभी राज्यों में पुलिस बलों की स्वीकृत संख्या 28 लाख थी, लेकिन 30% से अधिक पद ख़ाली थे। स्वीकृत संख्या में भी हमारी प्रति 100,000 आबादी पर केवल 144 पुलिसकर्मी थे, जबकि संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित मानदंड प्रति 100,000 लोगों पर 222 का है। इसके अलावा, पुलिस को या तो ख़राब प्रशिक्षण प्राप्त है या बिल्कुल भी प्रशिक्षण प्राप्त नहीं है। उनकी ख़ुफ़िया जानकारी प्राप्त करने की योग्यता, जांच और फ़ोरेंसिक क्षमताएं बेहद ख़राब हैं। उनके

रहने और काम करने की परिस्थितियां दयनीय और कई बार अमानवीय होती हैं। अन्य प्रशासनिक संगठनों की तरह पुलिस प्रशासन में उच्च स्तर पर सत्ता की कई परतें हैं, और बुनियादी और तत्काल सुधार कई वर्षों से लागू नहीं हुए हैं, जिनमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिदिष्ट सुधार भी शामिल हैं। पुलिस पर जनता का भरोसा कम है तथा और कम होता जा रहा है। यदि भारत के आम नागरिकों की अरक्षितता का समाधान करना है तो तत्काल सुधार किए जाने आवश्यक हैं। इसी प्रकार, न्यायिक व्यवस्था को मज़बूती प्रदान करना वर्षों से लंबित है, और न्यायपालिका भी, यहां तक कि शीर्ष स्तर पर भी, राजनीतिक हस्तक्षेप और हेरफेर का शिकार हो रही है। एक स्वतंत्र न्यायपालिका एक लोकतांत्रिक राज्य के प्रमुख स्तंभों में से एक है और इसकी अखंडता से समझौता नहीं किया जाना चाहिए।

21वीं सदी के एक मज़बूत, सक्षम राज्य का निर्माण

भारतीय पूंजीवाद को परभक्षी राज्य (या लाइसेंस राज) के पंजों से मुक्त करके उसका पोषण करना भारत की विकास गाथा की प्रमुख रूपरेखा थी। भारत के विकास के लिए राज्य को रास्ते से हटाना आवश्यक था। लेखक गुरचरण दास द्वारा ली गई कुख्यात हो चुकी चुटकी कि भारत रात में विकास करता है जब राज्य सोता है, भारत में 1991 के बाद की विकास कल्पना की जीवंत भावना का बेहतरीन ख़ुलासा करती है। लेकिन राज्य को रास्ते से हटाने की जल्दबाज़ी में, जहां राज्य और उसके संस्थानों की ज़रूरत है वहां भी राज्य की क्षमता सुनिश्चित करने पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। नतीजतन, भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड जैसे संस्थानों में प्रारंभिक निवेश के बावजूद भारत की नियामक व्यवस्था में राज्य के हस्तक्षेप की उसी प्रकार की अनेक कमज़ोरियां दिखाई देती हैं जिनसे आर्थिक सुधारों ने बचने की उम्मीद की थी। मज़बूत विनियमन के लिए तकनीकी कौशल का निर्माण करना, एक सक्षम क़ानूनी व्यवस्था को स्थापित करना, बेलगाम शक्ति के ख़िलाफ़ नियंत्रण और संतुलन स्थापित करना और सार्वजनिक जवाबदेही को सुनिश्चित करना आवश्यक था। राज्य निर्माण में एक ठोस प्रयास न होने के परिणामस्वरूप एक कमज़ोर और राजनीतिक रूप से अरक्षित नियामक परिदृश्य सामने आया है, और अनर्जक आस्तियों की तीव्र वृद्धि जैसी चुनौतियों में इसका भी बड़ा योगदान रहा है जिसने पिछले दशक के उत्तरार्ध में विकास को धीमा कर दिया। जब राज्य के मुख्य कार्यों की बात आती है, जिनमें विशेष रूप से मानव विकास प्रदान करना है जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, तो राज्य की कमज़ोर क्षमता और भी स्पष्ट दिखाई देती है।

21वीं सदी में आगे, भारत को तेज़ी से शहरीकरण से लेकर जलवायु परिवर्तन और तकनीकी प्रगति तक, नई चुनौतियों का सामना करना होगा, जिनके लिए शासन कला के प्रति एक अलग दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी। भारतीय राज्य को सहक्रियताओं का निर्माण करते हुए और समझौतों में तालमेल बिठाने के लिए प्रतिस्पर्धात्मक, परस्पर विरोधी दबावों का सामना करना होगा। बढ़े हुए ऊर्जा प्रावधान व आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए इंफ्रास्ट्रक्चर के लक्ष्यों बनाम जलवायु परिवर्तन के बीच खींचतान पर ज़रा विचार करें। इन दबावों से निपटने के लिए, 21वीं सदी में प्रशासन को उन्नत सोच वाला, फुर्तीला,

ज्ञान के प्रति ग्रहणशील और विश्वसनीय ढंग से समझौते कराने में सक्षम होना होगा। जो कि वर्तमान शासन कला से बहुत दूर है जो एक पृथक, योजनाबद्ध और बेतरतीब नीति निर्माण का अधिकार देती है। हर नीतिगत समस्या की एक योजना होती है और उसके समाधान के लिए एक आयोग का गठन किया जाता है। इन योजनाओं और आयोगों के साथ शायद ही कभी समस्या का लंबी अवधि का संयोजन और समाधान के प्रति सोच होती है, और न ही वे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में प्रभावी जुड़ाव को सक्षम बनाती हैं।

अगर 1991 का काल और उसके बाद के दशक राज्य को अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्रों से ख़त्म करने के बारे में थे, तो अगले दशक में, भारत को राज्य के पुनर्निर्माण और यह सुनिश्चित करने के लिए कड़ी मेहनत करनी होगी कि वह अपना काम पूरी दक्षता के साथ करे। यह एक जानी-पहचानी चुनौती है। 2016 के एक भाषण में ख़ुद प्रधानमंत्री ने यह महत्वपूर्ण टिप्पणी की थी कि भारत 19वीं सदी का प्रशासन है जो 21वीं सदी की चुनौतियों का सामना करने के लिए संघर्ष कर रहा है। बड़ी विडंबना यह है कि भारतीय राज्य ने राजनीति के रंगमंच पर तैनात किए जाने पर भरपूर ताक़त का प्रदर्शन किया है - 2016 में विमुद्रीकरण के साथ भारत का अनुभव इसका प्रमाण है। लेकिन अपने बुनियादी संप्रभु कार्यों को करने में राज्य बुरी तरह विफल हो गया है। आने वाले दशक में भारत को शक्ति के पथ पर लाने के लिए प्रशासनिक सुधार और मज़बूत, सक्षम संस्थानों के निर्माण के लिए राज्य में निवेश आवश्यक शर्तें हैं।

हम दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों के बारे में सुझाव देते हैं जहां निवेश आवश्यक हैं। पहला, राज्य को सही आकार देना। आम धारणा यह है भारतीय राज्य एक फूला हुआ, अत्यधिक स्टाफ़ वाला निकाय है, जो उदासीन, ख़राब प्रशिक्षण प्राप्त अधिकारियों से भरा पड़ा है। लेकिन वास्तविकता यह है कि कर्मियों के मामले में राज्य का वास्तविक आकार तुलनात्मक दृष्टि से दरअसल बहुत छोटा है। जनसंख्या के अनुपात में मापा जाए, तो भारतीय संघीय सरकार का आकार अपनी अमेरिकी समकक्ष के आकार का आधा है। यह बात जानने योग्य है कि भारत में सार्वजनिक रोज़गार 1986 में 19,000 प्रति दस लाख की जनसंख्या से गिरकर 2012 में 14,000 प्रति दस लाख की जनसंख्या पर आ गया था। लेकिन राज्य के आकार पर कोई भी चर्चा राज्य कर्मियों की कमज़ोर जवाबदेही और ख़राब प्रदर्शन की वास्तविकता का सामना करने से बच नहीं सकती। भ्रष्टाचार, तरफ़दारी, अक्षमता, उदासीनता और ग़ैरहाज़री नागरिकों और राज्य के बीच रोज़मर्रा की खींचतान की ख़ासियतें हैं, खासकर इसकी अग्रिम पंक्ति में। जवाबदेही की संस्कृति को शामिल करना भारत में राज्य निर्माण की प्रमुख चुनौती है।

इस दिशा में एक महत्वपूर्ण क़दम उठा लिया जाए, तो हम अपनी दूसरी प्रमुख सिफ़ारिश पर आ जाते हैं, जो है गहन विकेंद्रीकरण की प्रतिबद्धता। इतने बड़े आकार और पैमाने के बावजूद, भारतीय राज्य असामान्य रूप से केंद्रीकृत है। हस्तांतरण को अनिवार्य करने वाले एक संवैधानिक संशोधन के बावजूद, रोज़मर्रा के शासन में स्थानीय सरकारें मामूली भूमिका ही निभाती हैं। वे सार्वजनिक ख़र्च के महज़ 5.6% (2018-19 के आंकड़े) के लिए

ज़िम्मेदार हैं। कुल मिलाकर, केंद्र और राज्य सरकारें ही भारत में बुनियादी नागरिक सेवाएं प्रदान करती हैं। इसकी तुलना संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन से करें, जहां स्थानीय सरकारें कुल सार्वजनिक ख़र्च का क्रमशः 27% और 51% ख़र्च करती हैं (कपूर 2019)। दुनिया भर में, स्वास्थ्य, स्कूली शिक्षा, स्वच्छता और जल आपूर्ति जैसी प्रमुख सार्वजनिक सेवाएं स्थानीय सरकारों के अधिकार क्षेत्र में आती हैं। स्पष्ट सी बात है, सरकार लोगों के जितने क़रीब होगी, लोग उतने ही सीधे तौर पर राज्य पर जवाबदेही के दावे कर सकते हैं और अपने हितों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर सकते हैं। राज्य की अधिक जवाबदेही के लिए अधिक विकेंद्रीकरण महत्वपूर्ण है और एक मज़बूत और सक्षम राज्य के निर्माण के केंद्र में है।

राज्य की नसें: इसकी कमज़ोरियां और संभावनाएं

भारतीय संविधान में व्यक्त भारत का सपना भारत की लोकतांत्रिक ताक़त और दुनिया भर में राजनीतिक शक्ति का मूलभूत स्रोत बना हुआ है। आज इन मूल्यों के प्रति भारत की प्रतिबद्धता, विशेष रूप से धर्मनिरपेक्षता, बहुलवाद और विविधता के प्रति इसकी प्रतिबद्धता तेज़ी से अनिश्चित दिखने लगी है। यह आंशिक रूप से राजनीतिक और आर्थिक विकास के विशेष ऐतिहासिक मोड़ के कारण है जो संविधान के कुछ मूल बाध्यकारी सिद्धांतों को कमज़ोर करने के जोखिम में डाल रहा है। तीन ऐसे महत्वपूर्ण और संबंधित क्षेत्र हैं जिनमें भारत विशेष रूप से कमज़ोर है और जिनमें संवैधानिक सिद्धांतों के लिए बड़े जोखिम मौजूद हैं।

पहला है लोकतांत्रिक संस्थानों की स्वतंत्रता और प्रभावशीलता। ज़रा संसद के कामकाज पर विचार करें। प्रमुख संसदीय कार्य - बहस, विचार-विमर्श, विधायी जांच, कार्यकारी निरीक्षण जो जवाबदेही के मानक निर्धारित करते हैं -लोकतंत्र का सार हैं। लेकिन इन महत्वपूर्ण कार्यों के साथ गंभीर रूप से समझौता किया गया है। बीते कई दशकों में बैठकों की संख्या 1950 के 127 दिनों से घटकर हाल के वर्षों में मात्र 65-70 दिन रह गई है। 2020 में, केवल 33 दिन संसद के सत्र हुए। संसद के सत्र अक्सर बाधित होते हैं और बहस और जांच की जगह अराजकता और बार-बार स्थगन ने ले ली है। एक प्रमुख प्रबुद्ध मंडल, पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च (पीआरएस), जो भारत में विधायकों के साथ काम करता है, के अनुसार, 2021 के मानसून सत्र में लोकसभा ने अपने मूल रूप से निर्धारित समय के केवल 19% और राज्य सभा ने 26% समय काम किया। क़ानून बिना बहस या चर्चा के स्थायी समितियों में तेज़ी से पारित हो रहे हैं। कई संरचनात्मक बाधाएं हैं, जैसे मानहानि-विरोधी क़ानून जो पार्टी व्हिप के अनुसार मतदान को अनिवार्य करता है, जिसने संसद के कामकाज को कमज़ोर कर दिया है। लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए संसद की संरचना और कामकाज में सुधार तत्काल रूप से आवश्यक हैं।

दूसरा कारक जो संसद और वास्तव में लोकतांत्रिक संस्थाओं को अधिक व्यापक रूप से कमज़ोर करने के लिए ज़िम्मेदार है, वह है निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच आपराधिकता की बढ़ती हिस्सेदारी। यह प्रवृत्ति संसद के साथ-साथ राज्य विधानसभाओं में, और अब स्थानीय सरकारों में भी दिखाई देने लगी है। गंभीर

आपराधिक आरोपों वाले निर्वाचित प्रतिनिधियों का प्रतिशत पिछले 20 वर्षों में बढ़ता जा रहा है, और कुछ राज्य विधानसभाओं में पचास प्रतिशत के क़रीब है। यहां तक कि राजनीतिक दलों द्वारा खड़े किए जा रहे दाग़ी उम्मीदवारों की तादाद भी तेज़ी से बढ़ती जा रही है, जिन पर हत्या, बलात्कार और मारपीट जैसे जघन्य अपराधों के आरोप हैं। सरकार द्वारा नियुक्त विभिन्न समितियों और विधि आयोग ने भी चुनाव सुधारों की सिफ़ारिश की है ताकि आपराधिक रिकॉर्ड वाले उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने से रोका जा सके। लेकिन इनके कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकल सके हैं। आपराधिकता की चुनौती का प्रमुख कारण भारत में चुनावी प्रचार की आसमान छूती लागत है। राजनीतिक दलों की निजी संपत्ति और कॉरपोरेट फ़ंडिंग को चुनावी जीत से जोड़कर देखा जाने लगा है। पार्टी फ़ंडिंग में पारदर्शिता बढ़ाने के लिए सुधार करने के बजाय, हाल के वर्षों में भारत ने चुनावी बॉन्ड की शुरुआत करने के माध्यम से अपारदर्शिता बढ़ाने की दिशा में काम किया है - जहां एक दानकर्ता बॉन्ड ख़रीद सकता है और उन्हें राजनीतिक दलों के पंजीकृत बैंक खातों में जमा कर सकता है - जिससे राजनीतिक दलों को फ़ंडिंग और भी अधिक अपारदर्शी बन गई है। बॉन्ड ख़रीदकर, दानकर्ता और प्राप्तकर्ता बॉन्ड की ख़रीद या प्राप्ति का ख़ुलासा करने के लिए बाध्य नहीं हैं, और इस तरह नामों को गुप्त रखा जा सकता है। भारतीय लोकतंत्र का स्वास्थ्य भारत (और विडंबनात्मक रूप से इसके विधायकों) द्वारा चुनावी सुधारों और प्रचार संबंधी वित्त में सुधारों को लागू करने की दिशा में क़दम उठाने की क्षमता से जुड़ा है। ऐसा करने में विफलता का भारतीय लोकतंत्र पर गहरा, क्षयकारी प्रभाव पड़ेगा।

तीसरा, संघीय सिद्धांत, जो आज विवाद के एक बड़े विषय के रूप में उभरकर सामने आया है। राजनीतिक क्षेत्र में, भारत की भाषा, क्षेत्र और धर्म की विविधता को लंबे समय से संघीय मेलजोल के माध्यम से संरक्षित किया गया है। स्वतंत्र राष्ट्र के ढांचे के भीतर राज्य के विशिष्ट भाषाई, क्षेत्रीय और जातीय दावों का जवाब देने के लिए ये व्यवस्था नियमित रूप से विकसित होती गई है। अनुच्छेद 370 के निरसन और भारत के नागरिकता क़ानूनों में संशोधन जैसी हालिया घटनाओं ने भारत की अनेक जातीय और क्षेत्रीय पहचानों में मध्यस्थता कर पाने की राष्ट्रीय सरकार की विश्वसनीयता को कम कर दिया है। यदि वर्तमान राजनीतिक प्रवृत्तियां जारी रहीं, तो नया उप-राष्ट्रवाद भारत के राजनीतिक-संघीय ताने-बाने में नए और संभावित रूप से झगड़ों भरे विभाजनों का कारण बन सकता है। नई उपराष्ट्रीय लामबंदी से जुड़े घरेलू संघर्ष के नए रूपों की संभावना क़ायम है। भारत ने इसकी झलक दिसंबर 2019 में देखी जब नागरिकता संशोधन अधिनियम (सीएए) के पारित होने और भारतीय संसद द्वारा राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर के कार्यान्वयन की संभावना के विरोध में उत्तर-पूर्व भड़क उठा था। हाल ही में भारत ने उत्तर-पूर्व में तनाव देखा, जिसके परिणामस्वरूप सीमा पर संघर्ष और प्रदर्शन हुए। क्षेत्र के भीतर जातीय चिंताओं का नए सिरे से यह रुझान 1970 और 1980 के दशकों की याद दिलाता है। ये घटनाएं एक कटु सत्य को सामने लाती हैं - आज भारत में प्रतिस्पर्धी उप-राष्ट्रवाद और प्रतिनिधित्ववादी चिंताओं को भड़काने के हालात पूरी तरह संभव हैं। यह ज़रूरी है कि कोई भी सुरक्षा रणनीति इस चुनौती के प्रति जागरूक रहे।

आर्थिक क्षेत्र में बदलावों के कारण राजनीतिक क्षेत्र के भीतर इन तनावों के बढ़ने की संभावना है, जिसका भारत के संघीय संतुलन पर सीधा प्रभाव पड़ेगा। भारत के राजकोषीय ढांचे की बनावट कुछ ऐसी है कि शक्तियों और ज़िम्मेदारियों के उचित संतुलन को लेकर राष्ट्रीय और राज्य सरकारों के बीच निरंतर रस्साकशी जारी रहती है। संवैधानिक रूप से, राष्ट्रीय सरकार के पास राजस्व जुटाने की शक्तियां कहीं अधिक हैं, जबकि उप-राष्ट्रीय सरकारें अधिकतर संप्रभु कार्यों को पूरा करने के लिए ज़िम्मेदार हैं, विशेष रूप से सार्वजनिक सेवाओं से संबंधित। यह संवैधानिक राजकोषीय असंतुलन विवाद और निरंतर बहस का बिंदु रहा है, जिसने भारत के राजकोषीय संघीय संघटन को उन तरीक़ों से आकार दिया है जिन्होंने अक्सर राजकोषीय और प्रशासनिक केंद्रीकरण को प्रोत्साहित किया है। इस अर्थ में भारत की संघीय बनावट अनूठी रही है जिसमें वित्तीय और प्रशासनिक केंद्रीकरण निरंतर गहराते लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के साथ सह-अस्तित्व में रहा है, विशेष रूप से 1990 और 2000 के दशकों के दौरान जब गठबंधन की राजनीति ने राज्य स्तर के क्षेत्रीय दलों को राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचा दिया था। राज्य स्तर के राजनीतिक दल नियमित रूप से अत्यधिक केंद्रीकरण के बारे में शिकायत करते रहे हैं, पर इसके परिणामस्वरूप कभी भी राजकोषीय और प्रशासनिक क्षेत्र में अधिक विकेंद्रीकरण की व्यापक राजनीतिक मांग नहीं हुई जिसने एक अनिश्चित राजकोषीय संघटन को सक्षम किया, जो कि प्रशासनिक और वित्तीय केंद्रीकरण के साथ-साथ राजनीतिक विकेंद्रीकरण का पक्षधर था।

अब जबकि अर्थव्यवस्था अधिक जटिल होती जा रही है, तो यह राजकोषीय और प्रशासनिक संघवाद के परस्पर व्यवहार के तरीक़े पर नए सिरे से बातचीत करने के लिए एकदम सही समय है। आज करों को एकीकृत करने (वस्तु एवं सेवा कर के माध्यम से), राष्ट्रीय बाज़ारों (कृषि और श्रम जो संवैधानिक रूप से राज्य के विषय हैं) को विनियमित करने के लिए इंफ़्रास्ट्रक्चर विकसित करने, वहनीय सार्वजनिक सेवाओं के लिए परिस्थितियां तैयार करने और प्रदूषण से लेकर जलवायु परिवर्तन तक की पर्यावरणीय चुनौतियों से निपटने के लिए समन्वित रणनीतियां विकसित करने की दिशा में आगे बढ़ने के लिए एक ठोस आर्थिक आधार मौजूद है। लेकिन, एकीकरण की ये नई मांगें ऐसे समय में उभर रही हैं जब राज्यों के बीच सामाजिक और आर्थिक विकास में अंतर तेज़ी से बढ़ा है, विशेष रूप से पश्चिमी व दक्षिणी भारत और देश के बाक़ी हिस्सों के बीच, जिससे ज़रूरतों और निर्भरताओं का एक नया समूह बन रहा है, जबकि ग़रीब राज्य अपनी विकास संबंधी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए अधिकतर अमीर राज्यों से प्राप्त कर संसाधनों का एक बड़ा हिस्सा प्राप्त करते हैं। ये बढ़ी हुई निर्भरता राज्यों के बीच बड़े टकराव का एक उभरता हुआ स्रोत है और बड़े आर्थिक एकीकरण - भविष्य में आर्थिक विकास के लिए एक आवश्यक घटक - की राह में एक बाधा बनने का जोखिम है।

यदि आर्थिक क्षेत्र के इन तनावों को अनियंत्रित छोड़ दिया गया, तो आने वाले राजनीतिक परिसीमन अभ्यास के साथ इस दशक में इनके और बढ़ने की आशंका है। वर्तमान में, भारत के प्रत्येक राज्य में संसद और राज्य विधानसभा की सीटों की कुल

संख्या में 1971 की जनगणना के बाद से कोई बदलाव नहीं हुआ है, हालांकि जहां भी संभव हो पाया निर्वाचन क्षेत्रों में आबादी को समान करने के लिए सीमाओं में बदलाव किए गए हैं। संवैधानिक आवश्यकता के अनुसार, 2026 में, भारत को नवीनतम जनगणना के आधार पर सीटों के वर्तमान आवंटन को नया रूप देने की आवश्यकता होगी। इससे दक्षिणी और उत्तरी राज्यों के बीच विधायकों के मिश्रण में बदलाव आएगा। राज्यों में जनसांख्यिकी और प्रजनन क्षमता के विकास और दक्षिण में परिवार नियोजन की सापेक्ष सफलता को देखते हुए, सीटों की संख्या के मामले में उत्तर को लाभ होगा। राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक प्रतिनिधित्व के परिणामी पुनर्गठन से भारत के आर्थिक रूप से अपेक्षाकृत बेहतर दक्षिणी राज्यों और कहीं अधिक अविकसित उत्तरी राज्यों के बीच टकराव को बढ़ाने के लिए गहरी प्रतिस्पर्धा का एक नया रास्ता खुल जाएगा। ऐसे में उप-राष्ट्रवाद की एक नई राजनीति के उभरने की आशंका होगी और इन विवादों से निपटने के लिए सावधानीपूर्वक राजनीतिक और संस्थागत परिपक्वता की आवश्यकता होगी।

ऐसी स्थिति से बचने के लिए जिसमें ये कमज़ोरियां भारत की लोकतांत्रिक परियोजना के लिए गंभीर ख़तरा बन जाएं, राष्ट्रीय स्तर पर राज्य के हितों के प्रतिनिधित्व को मज़बूती देने के लिए संस्थागत क्षमताओं में निवेश करना अत्यावश्यक है। इस दशक में जिन तीन प्रमुख सुधारों पर ध्यान दिया जाना चाहिए, उनमें अंतर-राज्य परिषद को नई मज़बूती प्रदान करना; उच्च सदन (राज्य सभा) में सुधार करना ताकि यह राज्य विशिष्ट के हितों का प्रतिनिधित्व करने और राजनीतिक समझौतों के एक वास्तविक संस्थागत स्थान के रूप में उभरे; और वस्तु एवं सेवा कर के कामकाज में सुधार शामिल हैं।

भारत के संवैधानिक मूल्यों को साकार करने के लिए प्रतिबद्ध संस्थानों के साथ एक मज़बूत, सक्षम राज्य यह सुनिश्चित करने का एकमात्र मार्ग है कि भारत अपनी विकास क्षमता और वैश्विक व्यवस्था में अपना सही स्थान प्राप्त करे। अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए, भारत को अगले दशक में राज्य में निवेश करने और राष्ट्र के सामने आने वाली जटिल राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों से निपटने के लिए राज्य संस्थानों के निर्माण पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता होगी।

निष्कर्ष

1. *नॉनएलाइनमेंट 2.0* के प्रकाशन के बाद से भारत के बाहरी भू-राजनीतिक वातावरण और इसकी घरेलू राजनीतिक परिस्थितियों में भारी परिवर्तन हो चुके हैं। इन परिवर्तनों ने भारत के रणनीतिक विकल्पों और एक महान शक्ति की भूमिका ग्रहण करने की इसकी संभावनाओं को सीमित कर दिया है। भारत को इन बाधाओं को दूर करने और अंतर-राज्य संबंधों में सत्ता और प्रभाव की अपनी खोज को फिर से शुरू करने और, यदि संभव हो तो, बढ़ाने के लिए एक बदली हुई राष्ट्रीय रणनीति की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण से अगला दशक भारत के लिए निर्णायक दशक होगा।

2. वर्तमान समय में चल रही कोविड 19 महामारी सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट और आर्थिक संकट दोनों है जिसके प्रभाव अभी भी सामने आ रहे हैं। इसके गंभीर भू-राजनीतिक परिणाम हैं। महामारी से पहले के भी कुछ रुझान मौजूद हैं, जैसे वैश्विक अर्थव्यवस्था के प्रमुख केंद्र का अटलांटिक पार से पैसिफ़िक पार स्थानांतरित होना। अभी जबकि दुनिया एक बहुध्रुवीय एशिया और बहुध्रुवीय दुनिया की दिशा में आगे बढ़ रही है, तब भी यह बदलाव जारी ही है और हम पुरानी और नई अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के बीच संक्रमण में हैं। डिजिटल अर्थव्यवस्था के विस्तार में, विशेष रूप से सीमापार डिजिटल संचार में तेज़ी आई है। साइबर स्पेस और अंतरिक्ष आधारित संपत्तियों की सुरक्षा जैसे नए क्षेत्रों का महत्व बढ़ गया है। खेल के नियमों और मानदंडों को हर क्षेत्र में नया रूप और आकार दिया जा रहा है और भारत को इस प्रक्रिया में एक सक्रिय भागीदार बनना चाहिए। यह इस संबंध में भारत के हितों को साझा करने वाले विकासशील देशों और उभरती अर्थव्यवस्थाओं के एक बड़े समूह को प्रेरित करने के लिए एक नई प्राथमिकता, और बहुपक्षीय संस्थानों और प्रक्रियाओं को मज़बूत करने की ओर इशारा करता है ताकि मानदंडों को ज़्यादा व्यापक पटल पर और लोकतांत्रिक भावना के साथ स्थापित किया जा सके। लेखकों का मानना है कि भू-राजनीतिक बदलाव की अवधि जोखिमपूर्ण होती है, लेकिन यह अवधि भारत जैसे उभरते देशों के लिए अपनी रणनीतिक स्वायत्तता को विस्तार देने की, अर्थात अपने महत्वपूर्ण हितों के मामलों पर अपेक्षाकृत स्वायत्त निर्णय लेने की क्षमता को बढ़ाने

की गुंजाइश भी पैदा करती है। अहम फ़ैसले अभी लिए जाने चाहिए ताकि आने वाला दशक एशिया और एशिया के परे भारत के एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरने के लिए मंच तैयार कर सके। उनकी सिफ़ारिशों का अभिप्राय यही है।

3. लेखक आश्वस्त हैं कि अपनी आर्थिक संभावनाओं को बढ़ाने और अपने लोगों के आर्थिक और सामाजिक कल्याण में सुधार करने के लिएभारत को अपनी अर्थव्यवस्था की बहिर्मुखी नीति को बरक़रार रखना चाहिए, अपनी अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण को जारी रखना चाहिए और क्षेत्रीय व्यापार व्यवस्थाओं में भाग लेना चाहिए ताकि क्षेत्रीय और वैश्विक अर्थव्यवस्था के हाशिये पर धकेले जाने से बचा जा सके। भारत क्षेत्रीय और वैश्विक अर्थव्यवस्था के हाशिये से एक विस्तृत बाहरी भूमिका नहीं निभा सकता। इस संदर्भ में, लेखक भारतीय उपमहाद्वीप में क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण की महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर करना चाहते हैं। इस तरह का एकीकरण अधिक अंतर-निर्भरता के माध्यम से राजनीतिक संबंधों को मज़बूत करने में सहायक होने के साथ ही भारत को महत्वपूर्ण आर्थिक अवसर भी प्रदान करता है। बेशक आर्थिक आत्मनिर्भरता, या आत्मानिर्भर भारत, एक प्रशंसनीय ध्येय है, लेकिन इस बात से सावधान रहना चाहिए कि कहीं यह हमें उच्च लागत और निम्न गुणवत्ता वाली उस अर्थव्यवस्था की ओर न ले जाए जो 1990 के दशक की शुरुआत में आर्थिक सुधारों और उदारीकरण से पहले भारत के आर्थिक रिकॉर्ड की पहचान थी। भारत की रक्षा क्षमताओं को मज़बूत और उन्नत करने के लिए एक उच्च विकास प्रक्षेपपथ की बहाली अनिवार्य है।

4. एक विस्तृत क्षेत्रीय और वैश्विक भूमिका हासिल करने का भारत का प्रयास इच्छित परिणाम तभी देगा जब वह अपने उपमहाद्वीपीय पड़ोसी देशों के प्रबंधन का बेहतर काम करेगा। यह ऊपर उल्लिखित क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण के लिए अधिक सक्रिय प्रयास के माध्यम से ऐसा कर सकता है लेकिन एक सकल सुरक्षा प्रदाता और सार्वजनिक वस्तुओं का स्रोत बनकर। लेखकों का मानना है कि भारत को सार्क को क्षेत्रीय सहयोग के मंच के रूप में बढ़ावा देना जारी रखना चाहिए। नेबरहुड फ़र्स्ट नीति को मानव और भौतिक दोनों संसाधनों के कहीं अधिक इस्तेमाल और ज़्यादा निरंतर व उच्च स्तरीय राजनीतिक जुड़ाव के माध्यम से सुदृढ़ किया जाना चाहिए। पड़ोसियों के साथ संबंध अक्सर घरेलू राजनीति से प्रभावित होते हैं, लेकिन यह महत्वपूर्ण है कि यह प्रभाव भारत के राष्ट्रीय हितों के प्रयास को प्रतिकूल रूप

से प्रभावित या कमज़ोर न करे। यह पाकिस्तान और बांग्लादेश के साथ संवेदनशील संबंधों के प्रबंधन के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है।

5. भारत को चीन और पाकिस्तान के साथ विवादित भूमि सीमाओं और भारत के लिए उनकी मिलीभगत की बढ़ती संभावना का सामना करना पड़ रहा है। हमारे विरोधियों द्वारा इन सीमाओं के इस पार किसी भी घुसपैठ गतिविधि को भारी जोखिम व भारी लागत वाला उद्यम बना देने के लिए भारत को पर्याप्त सैन्य क्षमताओं को तैनात करने में सक्षम होना चाहिए। इन क्षमताओं को इस तरह आकार दिया जाना चाहिए कि अनुमानित ख़तरों का मुक़ाबला किया जा सके और सैन्य शक्ति के पश्चिम से उत्तर की ओर पुनर्संतुलन के लिए इसका पुनर्गठन किया जा सके। लेखक इस बात से आश्वस्त हैं कि भारत अपनी समुद्री क्षमताओं के निरंतर विस्तार द्वारा हिंद महासागर से प्रशांत महासागर तक संचार की समुद्री लाइनों में अपनी अनुकूल स्थिति का लाभ उठाकर अपने रणनीतिक विकल्पों का विस्तार करने में सक्षम होगा।

6. घनी आबादी वाला उष्णकटिबंधीय देश होने के नाते, भारत सामान्य रूप से पारिस्थितिक क्षरण और विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन से बहुत अधिक प्रतिकूल रूप से प्रभावित होगा। भारत अभी तक विकास की ऐसी प्रणाली का अपरिवर्तनीय रूप से भाग नहीं बना है जो संसाधन गहन -विशेष रूप से जीवाश्म ईंधन गहन - हो। इसके बुनियादी ढांचे के बड़े भाग का निर्माण किया जाना अभी बाक़ी है। लेकिन भारत को आर्थिक और सामाजिक उन्नति के लिए एक ऐसे नए मार्ग की आवश्यकता है जिसमें संसाधन कम लगें, जो न्यूनतम अपशिष्ट उत्पन्न करता हो और संरक्षण को सर्वोच्च प्राथमिकता देता हो। एक ओर विकास और दूसरी ओर महत्वाकांक्षी जलवायु परिवर्तन कार्रवाई और पारिस्थितिक अखंडता को बढ़ाने के बीच कोई समझौता नहीं हो सकता। विकास की वर्तमान रणनीति पर टिके रहना गतिरोध की ओर ले जाएगा। यह टिकाऊ नहीं है। विकास रणनीति को तत्काल नई दिशा देना अनिवार्य है। इस संदर्भ में प्रौद्योगिकी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। आर्टिफ़िशियल इंटैलिजेंस और मशीन लर्निंग जैसी उन्नत तकनीकों का समझदारी के साथ उपयोग तेज़ी से आगे बढ़ने के अवसर प्रदान कर सकता है। भारत की सफलता विकासशील देशों के लिए एक नमूना होगी। यह एक ऐसा क्षेत्र है जहां भारत अपने उदाहरण की शक्ति से दुनिया का नेतृत्व कर सकता है।

7. लेखकों को विश्वास है कि भारत के संविधान द्वारा व्यक्त भारत की परिकल्पना एक महान शक्ति की स्थिति के लिए देश के प्रक्षेपवक्र के लिए मार्गदर्शक स्तंभ बनी रहनी चाहिए। सदियों से भारत की बहुलता, इसका सहज समावेश, इसकी असाधारण विविधता, इसकी सहज मानवता की भावना और इसके लोगों का सर्वव्यापक स्वभाव ही है जो भारत को एक ऐसी सभ्यता के रूप में चिह्नित करता है जो अपनी पहचान में सुरक्षित और दुनिया में अपनी जगह के प्रति आश्वस्त है। कई पहचानों का जश्न मनाने वाले लोगों पर एकवर्णी फ्रेम थोपने का कोई भी प्रयास सफल नहीं होगा। व्यक्तिगत अधिकारों और उदारवादी भावना पर आधारित राजनीतिक लोकतंत्र भारतीय संस्कृति का स्वाभाविक अंग है और भारत में लोकतंत्र का अस्तित्व दुनिया भर में लोकतंत्र के भविष्य को निर्धारित करेगा। एक लोकतंत्र के रूप में भारत की सफलता सारी दुनिया के लिए महत्वपूर्ण है। यह भी महत्वपूर्ण है कि लोकतांत्रिक मूल्य समावेशी नीतियों में और आय व धन की असमानताओं को कम करने में दिखाई दें, और राज्य अपने सभी नागरिकों को स्वास्थ्य, शिक्षा और सुरक्षा प्रदान करने की अपनी प्राथमिक ज़िम्मेदारियों को पूरा करे।

8. लेखकों का मानना है कि निकट भविष्य में एक चीन ही है जो भारत के हितों पर सीधे तौर पर सबसे अधिक प्रभाव डालेगा, और इसके सामने चुनौती न केवल आर्थिक और सैन्य क्षमताओं में एक बड़ा अंतर है बल्कि एक वैचारिक चुनौती के रूप में भी है। दोनों ही देशों की लंबे समय से चली आ रही और प्राचीन सभ्यताएं हैं लेकिन दोनों के ऐतिहासिक व सांस्कृतिक अनुभव और मूल्य प्रणालियां भिन्न हैं। भारत को एक और चीन बनने की आकांक्षा नहीं रखनी चाहिए और इसके सर्वसत्तात्मक प्रक्षेपवक्र से ईर्ष्या का शिकार नहीं होना चाहिए। लेखकों का मानना है कि भारत एकमात्र ऐसा देश है जो अपने क्षेत्रफल और जनसंख्या, एक पुरानी और शानदार सभ्यता की विरासत, कुशल श्रमशक्ति और वैज्ञानिक व तकनीकी क्षमताओं के अपने विशाल भंडार के कारण चीन की न केवल बराबरी कर सकता है बल्कि उससे आगे भी निकल सकता है। इस प्रयास को और अधिक मज़बूती देने के लिए, पूंजी, प्रौद्योगिकी और ज्ञान संसाधनों के प्रवाह में बढ़ोतरी सुनिश्चित करने के लिए अमेरिका, यूरोप और जापान के साथ इसकी घनिष्ट भागीदारी का लाभ उठाया जा सकता है। इस क्षमता को हासिल करने के लिए अगला दशक महत्वपूर्ण होगा।

लेखकों के बारे में

यामिनी अय्यर
यामिनी अय्यर सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च की अध्यक्ष और मुख्य कार्यकारी हैं।

सुनील खिलनानी
सुनील खिलनानी शोधकर्ता, लेखक और अशोका यूनिवर्सिटी में राजनीति और इतिहास के प्रोफेसर हैं।

प्रकाश मेनन
लेफ्टिनेंट जनरल प्रकाश मेनन तक्षशिला संस्थान के सामरिक अध्ययन कार्यक्रम के निदेशक और राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद सचिवालय के पूर्व सैन्य सलाहकार हैं।

शिवशंकर मेनन
शिवशंकर मेनन अशोका यूनिवर्सिटी में विजिटिंग प्रोफेसर हैं। वह भारत के पूर्व राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार और विदेश सचिव हैं।

नितिन पइ
नितिन पइ तक्षशिला संस्थान के सह-संस्थापक और निदेशक हैं।

श्रीनाथ राघवन
श्रीनाथ राघवन अशोका यूनिवर्सिटी में इतिहास और अंतर्राष्ट्रीय मामलों के प्रोफेसर हैं और कार्नेगी इंडिया में एक अनिवासी सीनियर फेलो हैं। उनका प्राथमिक अनुसंधान फोकस भारत की विदेश और सुरक्षा नीतियों के समसामयिक और ऐतिहासिक पहलुओं पर है।

अजित रानडे
अजित रानडे आदित्य बिरला समूह के मुख्य अर्थशास्त्री हैं और तक्षशिला संस्थान में प्रतिष्ठित फेलो है।

श्याम सरण
श्याम सरण सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च में सीनियर फेलो और गवर्निंग बोर्ड के सदस्य हैं। वह भारत के पूर्व विदेश सचिव हैं और उन्होंने परमाणु मामलों और जलवायु परिवर्तन के लिए प्रधान मंत्री के विशेष दूत के रूप में कार्य किया है।